मानस चतुःशती स्मारिका

संपादक - जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

मानस चतुःशती स्मारिका

सम्पादक

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

प्रकाशक

रामचरित मानस चतुःशती राष्ट्रीय समिति

१-ए, सुनहरी बाग रोड, नई दिल्ली

तुलसी जयन्ती, संवत् २०३१

मानस राष्ट्रीय समिति



श्री कमलापति त्रिपाठी कार्य समिति की बैठक की अध्यक्षता करते हुए ।

राष्ट्रीय समिति के सदस्य

संरक्षक

व० वें० गिरि

अध्यक्ष

इन्दिरा गांधी

कार्यकारी अध्यक्ष

कमलापति त्रिपाठी

सभापति

कर्णसिंह

उप-सभापति

सत्यनारायण सिंह

शम्भूनाथ शुक्ल

विद्याचरण शुक्ल

महामंत्री

कृष्णचन्द्र पन्त

कोषाध्यक्ष

गूजरमल मोदी

मंत्री

सुधाकर पाण्डेय

बालकृष्ण

रत्नाकर पाण्डेय

उप-समितियों के संयोजक

संगठन-उप-समिति

तारकेश्वर पाण्डेय

प्रचार उप-समिति

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

रामायण प्रचार उप-समिति

कपीन्द्र

साहित्य-शोध उप-समिति

नगेन्द्र

अन्तर्राष्ट्रीय-कार्यक्रम उप-समिति

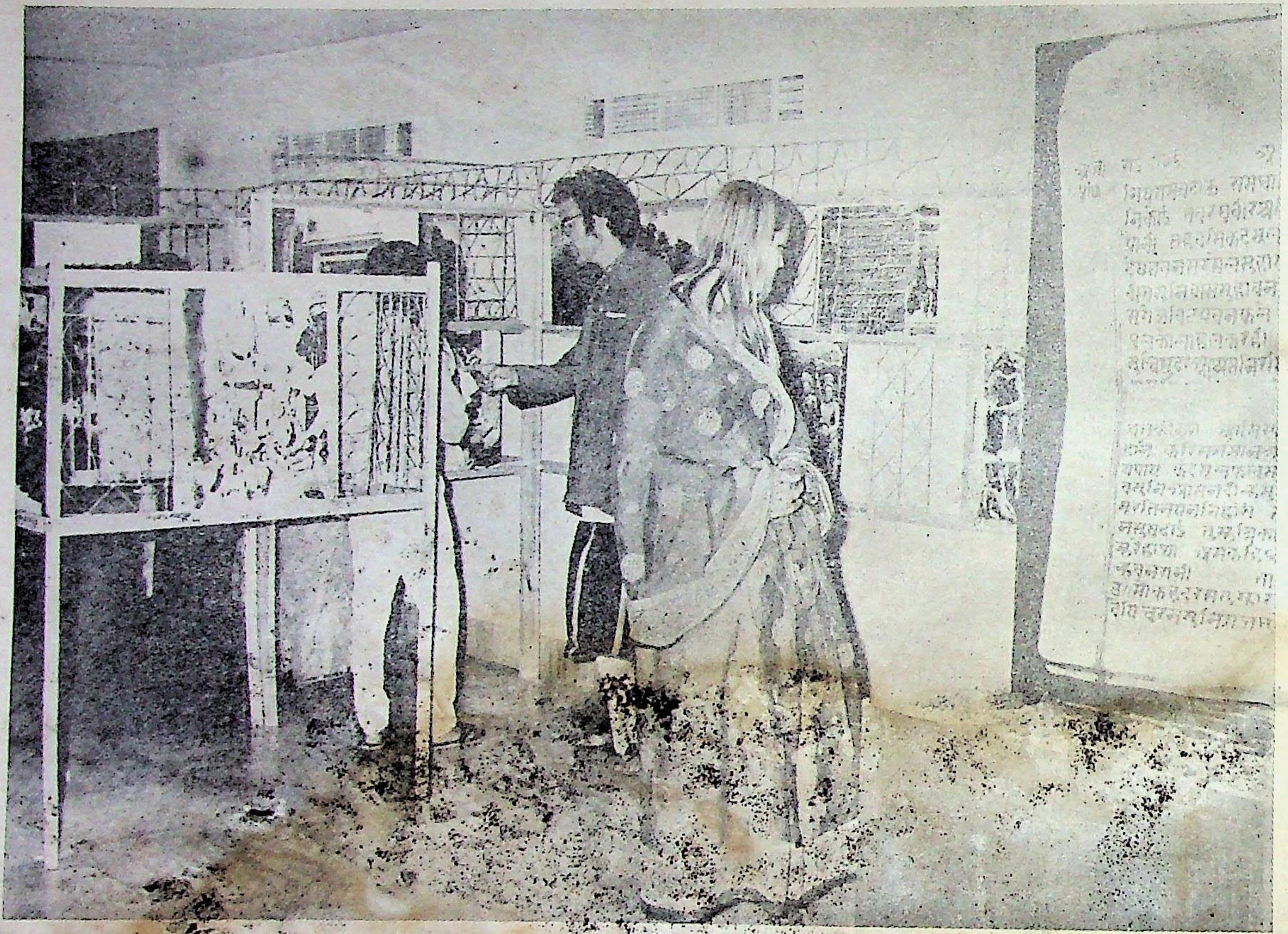
गिरिजा कुमार माथुर

सांस्कृतिक-कार्यक्रम उप-समिति

सुरेश अवस्थी

शैक्षणिक उप-समिति

डा० वेणीशंकर झा



मानस प्रदर्शनी, विज्ञान भवन; १९७३

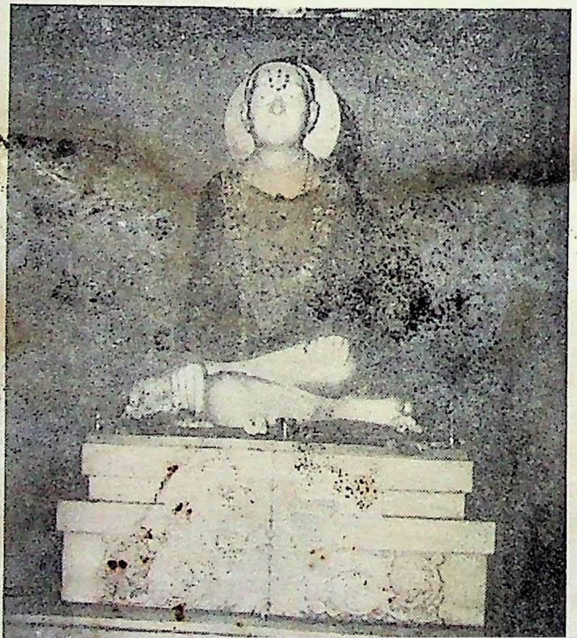
विषय-सूची

तुलसीदास जी की चार प्रतिमाएं









निवेदन

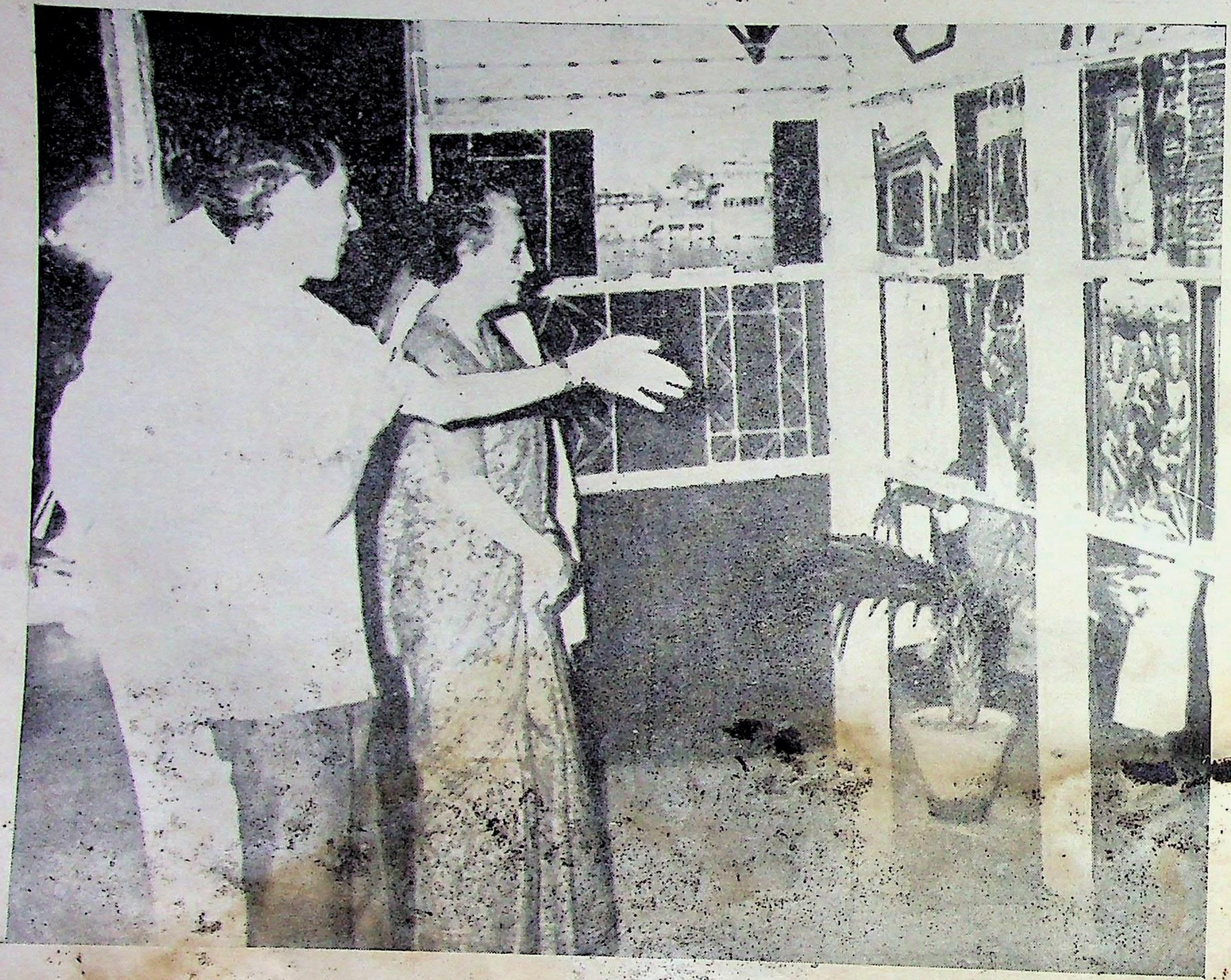
रामचरित मानस राष्ट्रीय समिति की स्थापना अप्रैल सन् १९७० में हुई थी। पिछले चार वर्षों में समिति की ओर से राजधानी में विभिन्न आयोजन किये गये। अन्य स्थानों पर भी समितियों की स्थापना की गयी, आयोजन किये गये तथा रामचरित मानस के सम्बन्ध में विचार किया गया। इस काल में रामचरित मानस का नये सिरे से साहित्यिक मूल्यांकन हुआ और आकाशवाणी तथा समाचारपत्रों में बहुत से लेख प्रसारित या प्रकाशित हुए। विदेशों में भी रामचरित मानस की चर्चा हुई, विशेष तौर पर मारिशस, ब्रिटेन और सोवियत संघ में अनेकों आयोजन किए गए। राष्ट्रीय समिति ने एक देशव्यापी कार्यक्रम बनाया था। बाद में भारत सरकार के शिक्षा विभाग ने उस कार्यक्रम का दायित्व अपने सिर पर ले लिया। इनमें प्रमुख था एक तुलसी सदन की स्थापना, विश्व रामायण सम्मेलन तथा रामचरित मानस के छात्रोपयोगी संस्करण तैयार करना। यद्यपि राष्ट्रीय समिति की कार्यविधियां अब हलकी हो रही हैं, परन्तु हम आशा करते हैं कि भारत सरकार ने जो दायित्व सम्भाला है, उसे निभाएगी। अनेक विश्वविद्यालयों जैसे उज्जैन, आंध्र, बंगलौर आदि ने तुलसीपीठ की स्थापना के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से सहायता मांगी है।

देश-विदेश में प्रचार के लिए भारत सरकार के सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय ने राष्ट्रीय समिति को बहुत सहयोग दिया है। उन्होंने न केवल हिन्दी क्षेत्रों के रेडियो स्टेशनों से, बल्कि बम्बई और पूना जैसे रेडियो स्टेशनों से रामचरित मानस पर श्रीमती शान्ता शेलके और श्री अशोक कामत की वार्ताएं प्रसारित की और अन्य अहिन्दी क्षेत्रों के रेडियो स्टेशनों पर भी ऐसे कार्यक्रम रखे गए। पत्र सूचना कार्यालय ने रामचरित मानस पर इन वर्षों में बहुत से निबन्ध अधिकारी विद्वानों से लिखाए और उन्हें प्रचारित किया। विज्ञापन तथा दृश्य श्रव्य निदेशालय ने तुलसीदास जी के बड़े चित्र और पोस्टर तथा रामचरित मानस पर हिंदी, नेपाली और अंग्रेजी में पुस्तिकाएं प्रकाशित कराई। हम इन सब के लिए तत्संबंधी मंत्रियों और अधिकारियों के अनुग्रहीत हैं।

राष्ट्रीय समिति की ओर से तीन पुस्तकें डा० नगेन्द्र के सम्पादकत्व में तैयार कराई गयी थीं। इनमें से एक 'रामचरित मानस : एक तुलनात्मक अध्ययन' का राधाकृष्ण प्रकाशन के सहयोग से प्रकाशन हो चुका है। दो अन्य पुस्तकें तैयार हैं। रामचरित मानस चतुःशती समारोह के अवसर पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों में वृद्धि आई। राष्ट्रीय समिति की ओर से मानस पर आधारित संगीत और नृत्य के विशेष कार्यक्रम बनाए गए। हिज मास्टर्स वायस कम्पनी के संचालकों ने श्रीमुकेश से रामचरितमानस के रेकार्ड तैयार करवाए और अनेकों कलाकारों ने मानस को आधार मानकर संगीत और नृत्य के अनेकों कार्यक्रम देश-विदेश में प्रस्तुत किए।

प्रस्तुत स्मारिका में कुछ ऐसे लेख दिये गये हैं जो मानस के महत्व पर विशेष प्रकाश डालते हैं। विभिन्न स्थानों पर जो कार्यक्रम हुए, उनकी भी एक संक्षिप्त रिपोर्ट देने का प्रयास किया गया है। मानस चतुःशती के सम्बन्ध में जो कुछ हुआ, उसकी यह बहुत संक्षिप्त झांकी है। इस अवसर पर भारत के अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने विशेषांक निकाले, गोष्ठियां हुईं, स्मारिकाएं निकलीं; परन्तु हमने यहां पर प्रायः वे निबंध ही संग्रहीत किए हैं जो फुटकर रूप से लिखे गए हैं और जिनका एक स्थान पर प्रकाशित करना यह संकेत देता है कि चतुःशती समारोह ने किस प्रकार की विचारधाराओं को जन्म दिया। राष्ट्रीय समिति के कार्य में अनेक राज्य सरकारों ने सहयोग दिया जिनके हम कृतज्ञ हैं। इनमें हिन्दी और अहिन्दी दोनों क्षेत्रों की सरकारें हैं। थोड़े समय में जो प्रयास हमारे सहयोगियों के परिश्रम से संपन्न हो सका, वह सामने है। हम अपने समस्त लेखकों, समाचार भेजने वाली संस्थाओं और इसके सम्पादन तथा प्रकाशन में सहयोग देने वाले कार्यकर्ताओं के आभारी हैं, विशेषतः लोकराज सम्पादक श्री प्रेमनाथ चतुर्वेदी के जिन्होंने इस स्मारिका के सम्पादन और प्रकाशन में अथक परिश्रम किया जिससे स्मारिका अपने वर्तमान रूप को पा सकी है।

तुलसी जयन्ती, सम्वत् २०३१ —जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी



चतुःशती प्रारम्भ समारोह में प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी विज्ञान भवन में चित्र प्रदर्शनी देख रही हैं। साथ में हैं सांस्कृतिक कार्य समिति के संजोजक डा० सुरेश अवस्थी।

जब तक गंगा की धारा बहेगी तब तक मानस के प्रति श्रद्धा बनी रहेगी

—इन्दिरा गांधी

रामनवमी भारत के अधिकांश लोगों के लिए पवित्र दिन है। हम सब जानते हैं कि भारत में राम नाम कितना लोकप्रिय है और श्रीराम के प्रति कितनी अटूट श्रद्धा है। हिन्दू धर्म के सभी अनुयायियों के लिए राम धर्म, शौर्य, संयम, त्याग और करुणा की मूर्ति हैं। रामायण ने अनगिनत मूल्य और आदर्श प्रस्तुत किए हैं जो अनुकरण करने योग्य हैं—सीता का पतिव्रत-धर्म, लक्ष्मण की निष्ठा, हनुमान की भक्ति। यह कहना गलत नहीं होगा कि रामायण और महाभारत—इन दो ग्रन्थों ने हमारे राष्ट्र के चरित्र का निर्माण किया है।

रामायण आदिकाव्य माना जाता है—भारत का प्रथम महाकाव्य। किस तरह से वाल्मीकिजी के हृदय में करुणा उपजी और उन्होंने इस महाकाव्य की रचना करने की सोची। यह तो सब जानते हैं कि रामायण की काव्य माधुरी से सभी प्रभावित होते हैं। महान काव्य अक्सर दिव्यता की देन माने गए हैं। साथ ही, इनमें मानवता के उच्च गुण भी समाहित हैं। रामायण में बच्चों के लिए कितनी रमणीय कहानियां हैं। पुरुषों और महिलाओं को जीवन में इससे सान्त्वना, मार्गदर्शन तथा प्रेरणा मिलती है। अनगिनत कवियों, नाटककारों, चित्रकारों और ग्रामीण कलाकारों के लिए यह प्रेरणा का मुख्य स्रोत है।

विदेशों में भी श्रद्धा

न केवल भारत में परन्तु एशिया के कई भागों में, जैसे थाईलैंड, हिन्दचीन, इण्डोनेशिया में, इस पर लोगों की श्रद्धा है और यह अति लोकप्रिय है। इससे प्रमाणित होता है कि यह राष्ट्र और सम्प्रदाय की संकीर्णता से ऊपर है। इन देशों में नृत्य-नाटिका और कठपुतली द्वारा इसका प्रदर्शन भारत से अधिक कुशलता के साथ किया जाता है और इस विषय में हम इन कई देशों से बहुत कुछ सीख सकते हैं।

यह प्रसन्नता की बात है कि भारत में भी शहर-शहर और गांव-गांव में न केवल समारोह, बल्कि रामकथा को और किसी तरह से नाटक और दूसरे ढंग से मंच पर प्रस्तुत करने की चेष्टा कर रहे हैं। वैसे तो राम की कहानी सब जगह प्रदर्शित की जाती है, लेकिन वह जिस सुन्दरता से होनी चाहिए, उसकी तरफ बहुत कम ध्यान दिया गया है। एकाध शहरों में तो कुछ इस दिशा में हुआ है और अच्छा काम हुआ है, लेकिन अधिकांश जगह वैसे ही होते हैं जैसे बरसों पहले होते थे। श्रद्धा बहुत है उसमें, लेकिन किस तरह से उसका रूप कैसा हो जिससे ज्यादा प्रभाव पड़े लोगों पर और उससे कुछ सीख सकें, उसकी तरफ

बहुत कम ध्यान दिया है और मुझे आशा है कि हमारी समिति के द्वारा ऐसी शुरूआत की जा सकेगी। जो लोग इस काम को शहर में कर रहे हैं—दिल्ली में ही हो रहा है और थोड़ा-बहुत महाराष्ट्र इत्यादि में है—उनको भी ध्यान देना चाहिए कि दूसरी जगह किस तरह से यह फैले, जिसमें कि एकरूपता हो।

जनमानस पर गहरा प्रभाव

हमारे अपने देश में, प्रत्येक भाषा में रामायण का अनुवाद हुआ है। इनमें से कुछ इतने लोकप्रिय हैं कि लगता है कि मौलिक ग्रन्थ से होड़ ले रहे हों—जैसे तुलसीकृत रामचरित मानस हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों के साधारण लोगों के लिए रामायण का अर्थ वाल्मीकि की अपेक्षा, अधिक तुलसीदास से है। उन्हें तुलसी के मानस की कई पंक्तियां कंठस्थ हैं और प्रतिदिन की भाषा के भाग बन गई हैं। तुलसी की रामायण हिन्दी साहित्य की सबसे महान उपलब्धि है। यह न केवल उस समय की अच्छी कृतियों को प्रतिबिम्बित करती है, बल्कि आगे के साहित्य को भी प्रभावित करती है। इस प्रकार इस महाकाव्य ने भारत की जनता, भाषा और साहित्य पर गहरा प्रभाव डाला। रामायण के कुछ भागों की निन्दा सुनी जाती है और कुछ ऐसी बातें भी एकाध हैं जिनका हम समर्थन नहीं कर सकते। ज़ाहिर है मानस में जो कुछ कहा गया है उसको आज के युग में अक्षरश: सही नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह स्वाभाविक है कि उसमें तत्कालीन रीति-रिवाजों का उल्लेख है और कई बातें प्रतीक के रूप में हैं।

सभी के लिए प्रेरणादायक ग्रन्थ

जैसा कि आप सबको मालूम है कि इस महान सन्त ने ४०० वर्ष पहले यह महाकाव्य लिखना आरम्भ किया। यह हमारा सौभाग्य है कि इतिहास, साहित्य और सद्धर्म की इस घटना पर हम देश में उत्सव मना रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जब तक गंगा की धारा बहती रहेगी और भारत में प्राणी रहेंगे, तुलसी और मानस के प्रति श्रद्धा बनी रहेगी। ऐसे महान ग्रन्थ रामायण का सन्देश जनसाधारण तक पहुंचाने की भारी आवश्यकता है।

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिय दृग दोष विभंजन ॥

मानस के राम आज भी मानव के पथ-प्रदर्शक

—डा० कर्णसिंह

रामनवमी के दिन चार सौ वर्ष पूर्व गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने एक ग्रन्थ की रचना आरम्भ की थी—एक ऐसा ग्रन्थ जिसका प्रकाश चार सौ वर्ष में दिन-प्रतिदिन बढ़ा है। जिसने करोड़ों व्यक्तियों के जीवन को प्रभावित किया है, करोड़ों दुखियों को एक नई शक्ति दी है। करोड़ों भटके हुए लोगों का पथ-प्रदर्शन किया है। यह ग्रन्थ है रामचरितमानस।

रामचरितमानस जैसे जो ग्रन्थ होते हैं, उनको हम श्रद्धांजलि अर्पित करें या न करें, उनकी चतुःशतियां हम मनायें या न मनायें, उन ग्रन्थों में तो कोई वृद्धि नहीं हुई। उनकी आवश्यकता होती है मानव को, क्योंकि ऐसे ग्रन्थ-रत्नों से वह लाभ उठा सकता है।

मानस के मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के विषय में तो कुछ कहना बहुत कठिन है। उनका तो व्यक्तित्व इतना विशाल, इतना प्रकाशमय है कि वहां समझ में नहीं आता कि क्या कहें। एक दृष्टि से तो हम उन्हें परब्रह्म स्वरूप मानते हैं। अगर यह दृष्टि ही रखी जाए तब तो कुछ भी कहना सम्भव है नहीं।

त्वमेव भान्तु···सर्वं···
सत्यभाषा सर्वमिदम् विभाति
यथो वासो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

उपनिषद का वाक्य है। जहां वाणी और बुद्धि पीछे गिर जाती है, समझ नहीं पाते, बोल नहीं पाते। अगर हम श्रीराम के परब्रह्म स्वरूप का रूप देखें तो उनके विषय में तो हम कुछ कह ही नहीं सकते।

लेकिन श्रीराम की विशेषता यह है कि उनका एक दूसरा भी रूप है—दूसरा पक्ष है—मानवीय। उस मानवीय पक्ष में हम बहुत कुछ पा सकते हैं। इस रूप में उन्होंने एक प्रकार से एक ऐसी मर्यादा स्थापित की, एक ऐसा पथ प्रदर्शन किया, जिससे आज भी मानव बहुत लाभ उठा सकता है। उनका सारा जीवन एक प्रकार से कठोर साधना रहा। उन्होंने बताया कि किस ढंग से व्यवहार होना चाहिए—माता-पिता से, स्त्री से, भ्राता से, मित्र से, शत्रु से, दुख में, सुख में, प्रजा से किस प्रकार का व्यवहार होना चाहिए। वचन का क्या मूल्य है, कर्तव्य क्या है। ये चीजें श्रीराम के जीवन में हमारे सामने आती हैं। ऐसे राम, विशेषकर मानस में तुलसी के जो राम हैं, मैं समझता हूं कि आज भी हमारा बहुत पथ-प्रदर्शन करते हैं।

सजीव, चैतन्य ग्रन्थ

रामचरितमानस जो ग्रन्थ है, यह जो रामकथा है, यह केवल कोई संग्रहालय में रखने वाली चीज नहीं है। यह तो जीवित है, चैतन्य है। एक ऐसी कथा, ऐसा ग्रन्थ है, जिसका प्रकाश आज भी हमारे सामने

हैं। इस कथा में जो लोग हैं—श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, सीता, हनुमान या राक्षसीय वृत्ति के लोग, वे सब एक प्रकार से आज भी हमारे सामने हैं, हमारे भीतर हैं, हमारे आगे हैं।

क्रांतिकारी राम

हम रामचरितमानस को केवल एक प्राचीन पुस्तक के रूप में देखें, केवल संग्रहालय की वस्तु बनाकर रख दें तो समझता हूं उससे कोई लाभ नहीं होगा। लाभ इससे होगा कि हम इस ग्रन्थ का पुनर्मूल्यांकन अपने जीवन में करें। मैं तो यह कहूंगा कि इस ग्रन्थ की आज और भी ज्यादा आवश्यकता है उस समय से, जब यह लिखा गया। क्योंकि आज की जो स्थिति है, वह एक बड़ी अद्भुत स्थिति है। जिस परिस्थिति में इस समय हम हैं, उसमें प्राचीन मान्यताएं टूट रही हैं, क्रान्ति की ओर हम जा रहे हैं। मगर एक बात याद रखिए। श्रीराम बड़े भारी क्रान्तिकारी थे। श्रीराम के मुकाबले में मैं समझता हूं क्रान्तिकारी आपको हमारे इतिहास में नहीं मिलेगा—लेकिन श्रीराम ने मर्यादा और आदर्शवाद को भी अपनाया।

प्रश्न यह उठता है कि मर्यादा का और क्रान्ति का क्या परस्पर विरोध ही रहेगा या इनका समन्वय होगा? आज क्रान्ति तो आ रही है देश में। क्रान्ति के बिना यह देश आगे भी नहीं बढ़ेगा। क्रान्ति के बिना वह रामराज्य भी जिसकी कल्पना गांधीजी ने की, हम स्थापित नहीं कर सकेंगे। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या हम सब मर्यादाओं को तोड़कर, सब आदर्शों को कुचलकर, क्रान्ति लाने का प्रयत्न करेंगे या मर्यादा और आदर्श को भी रखेंगे और क्रान्ति भी लाएंगे। आज हमारे देश के सामने सबसे बड़ा प्रश्न यही है। यदि क्रान्ति और मर्यादा का समन्वय कहीं हमें मिलता है तो वह श्रीराम के जीवन में मिलता है। हम उससे प्रेरणा ले सकते हैं। इसलिए मैं यह समझता हूं कि तुलसीदासजी की रामायण सजीव है, चैतन्य है। वह हमारे लिए आज भी पथप्रदर्शक है।

एक बात और। रामचरितमानस केवल हिन्दी भाषियों के लिए नहीं है। रामचरितमानस तो प्रत्येक भाषा-भाषियों के लिए है, बल्कि केवल भारतवासियों के लिए ही नहीं, सारे संसार के वासियों के लिए है। इसमें भाषा भेद करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलांगम् सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामम् रघुवंशनाथम्॥

रामचरितमानस में सार्वभौम जीवन-दर्शन

—कृष्णचन्द्र पन्त

रामचरितमानस आदर्श और आचरण की एक ऐसी संहिता है जो मनुष्य को आत्मोन्नति के उच्चतम शिखर को स्पर्श करने का द्वार खोलती है। रामकथा उस पर्वतराज हिमालय के समान है जहां से अनेक सरिताएं निकलकर न केवल भारत के चारों ओर प्रवाहित हुई, बल्कि उनका प्रसार विदेशों तक में हुआ।

गोस्वामी तुलसीदास की अमर कृति रामचरितमानस में सार्वभौम जीवन-दर्शन का समन्वय है। हर कालजयी रचना के दो पक्ष होते हैं। एक पक्ष अपने देश और काल से सम्बद्ध यानी सामयिक होता है, जिसमें युग-विशेष के जीवन मूल्यों और प्रवृत्तियों का ही नहीं उसकी रीतियों और रूढ़ियों का भी समावेश रहता है। दूसरा पक्ष देश-काल की सीमाओं से मुक्त सार्वभौम और सार्वकालिक होता है जिसमें शाश्वत मूल्यों और जीवन-तत्वों का प्रतिफलन होता है। पहला पक्ष स्थिर होता है और उसकी उपयोगिता अपने समय तक ही सीमित होती है, जबकि दूसरा पक्ष जीवन्त और गतिमान होता है जिसका महत्व प्रत्येक युग और काल के लिए रहता है। रामचरितमानस का मूल्यांकन इसी दृष्टि से करना चाहिए। उसमें एक ओर अपने युग की—रूढ़िग्रस्त मध्ययुग की रूढ़ि-रीतियों का प्रतिविम्ब है, और दूसरी ओर उसमें चिरन्तन जीवन-मूल्यों की स्थापना है।

तुलसीदास जनता के कवि हैं—उनका गौरव इस बात में है कि उन्होंने भारतीय दर्शन और संस्कृति के अमृत तत्वों को जनभाषा में व्यक्त कर उन्हें जन-जन की सम्पत्ति बना दिया है। उसमें जो सामयिक था वह अतीत के साथ पीछे छूट गया, किन्तु जो शाश्वत, जीवनदायक मानवीय तत्व हैं वे हमारे राष्ट्रीय जीवन की अमूल्य निधियां हैं जिनका सार-सर्वस्व इन पंक्तियों में मुखरित है :

सीयराममय सब जग जानी।
करहु प्रनाम जोरि जुग पानी॥

महात्मा गांधी को रामराज्य की प्रेरणा देने वाला और मानवप्रेम की सरिता बहाने वाला विश्व में यही एकमात्र ग्रन्थ ऐसा है जिसमें सब के लिए सब कुछ है।

मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥

रामचरितमानस कालजयी रचना

—महादेवी वर्मा

रामचरितमानस एक शब्द में भारत का जन-मानस है। भारत की कला, संस्कृति व धर्म का नाम लें तो वह रामचरितमानस है। वह कालजयी रचना है। आज के युग में जब विज्ञान ने मनुष्य को अकेला कर दिया है, उसकी बड़ी उपयोगिता है। कोई भी महान रचना कालजयी होती है। कालजयी रचना के विषय में यह पूछने का क्या अर्थ है कि उसकी सार्थकता क्या है? प्रत्येक महान् रचना की हर युग में नई व्याख्या होती है, पर रचना वही रहती है।

जब मैं राम के सम्बन्ध में सोचती हूं तो तुलसीदास ही नहीं, कालिदास भी याद आते हैं। पर जैसे एक को देखने के लिए सिर ऊंचा करना पड़ता है, जैसे हिमालय को देखने के लिए सिर ऊंचा करना पड़ता है, दूसरे को देखने के लिए आंखें नीची करनी पड़ती हैं और हमें हरी-भरी, उर्वरा, सजला, निरन्तर सुन्दर धरती दिखाई देती है, यह तुलसीदास है। राम की कथा प्राचीन है और असन्दिग्ध है। राम का उल्लेख उपनिषदों, ब्राह्मणों और पुराणों में हुआ है। वाल्मीकि ने रामकथा लिखी है तथा संस्कृत का समस्त काव्य का आधार भी राम-कथा को लेकर है। इतना होते हुए भी रामचरितमानस की क्या विशेषता है? जनजीवन में भी राम-कथा बड़ी व्यापक है। कोई सोहर का ऐसा गीत नहीं जिसमें कौशल्या न हो, कोई बारहमासा नहीं जिसमें राम न आएं। समस्त रसमय लोकगीत रामकथा से जुड़े हैं। भागवत् ग्रन्थ में वासुदेव की कथा पहले आई। कृष्ण की गाथा पहले मिलती है। वह रस का समुद्र है। उसमें जो राम की उपासना आई, उसमें राम के ऊपर कृष्ण के रसमय जीवन का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि राम भी रास करने लगे। राम की कथा को कृष्ण की कथा के रूप में उतरना पड़ा।

तुलसीदास ने देश की स्थिति को देखकर यह तय किया कि रस के समुद्र को कोई तट दिया जाय। राम की कथा को उन्होंने राम की मर्यादा का तट दिया। रामचरितमानस में एक भी पंक्ति नहीं है, जो जीवन में लक्ष्य की मर्यादा से दूर हो। नदी कोई ऐसी नहीं होती जिसमें कगार न गिरें। राम-चरित्र में भी तुलसीदासजी ने एकाध स्थान पर अस्थिरता का वेग दिखाया है, पर लक्ष्य को कहीं भंग नहीं होने दिया। रामचरितमानस काव्य में शौर्य के साथ करुणा की सजलता झलकती ही रहती है।

एकमात्र संगी

महाभारत में भी वीरता की भावना है, पर उसे पढ़कर ऐसा लगता है कि हम रक्त की नदी के तट पर खड़े हैं। तुलसीदासजी ने भी शौर्य का वर्णन किया है, पर वह उस तरह का नहीं। वहां पर मंगल के लिए शौर्य है, अकल्याण के लिए नहीं, ध्वंस के लिए नहीं। मानस जीवन के संघर्ष का काव्य है। अजेय काव्य है। जिस भारतीय जन के पास कुछ

भी नहीं, दर्शन नहीं, ज्ञान नहीं और अक्षर ज्ञान तक नहीं, पर यदि उसके पास चार सौ वर्ष से स्पन्दन कर रहा एकमात्र संगी रामचरितमानस है, उसके पास केवल तुलसीदास है, तो उसके पास सब कुछ है।

अध्ययन का अजस्र स्रोत

आज के युग में सवाल किया जा रहा है कि इस ग्रन्थ की सार्थकता क्या है ? किसी अशिक्षित ने आज तक यह सवाल नहीं पूछा। यह विद्वानों का मनोविलास है। विद्वानों के लिए भी रामचरितमानस में बहुत कुछ है। उनके जीवनपर्यन्त अध्ययन के लिए है, यदि वे विचार करें। यह अकेला काव्य है, जो प्रेम के स्वच्छन्द रूप को स्वीकार नहीं करता। राम-सीता की प्रेम-कथा जितनी मर्यादित और समर्पित है, वैसी कोई भी कथा आपके पास नहीं। मन की हर भावना व्यक्त है। जब राम कहते हैं कि मेरा मन तो हर समय तुम्हारे ही पास रहता है, तो इससे ज्यादा कोई प्रेमी क्या कह सकता है ? यह कहना ठीक नहीं कि तुलसीदास ने प्रेम को नहीं समझा था या सौन्दर्य को नहीं समझा था। उन्होंने सौन्दर्य के जो रूप रखे हैं, उसके अनेक बिम्ब एक साथ आते हैं।

नाटकीय कथा

एक बात ध्यान में रखने की है कि राम की कथा नाटकीय कथा है। वहां संवाद भी हैं। जब रावण मन्दोदरी की सीख नहीं मानता तो उसने मन्दोदरी के बारे में जो कहा है, वह न कहेगा, तो क्या कहेगा ? ऐसे ही एक संवाद मंथरा के साथ है। तुलसीदास ने नाटक के हर पात्र के हृदय में प्रवेश कर उस जैसी बात कही है। मानस में जो पात्र हैं, वह अधिक मानवीय हैं और उनका चित्रण मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हुआ है। आज जब वैज्ञानिक युग में मनुष्य अकेला हो गया है और राजनीति का सम्प्रदायवाद उस समय के सम्प्रदायवाद से अधिक भयानक हो गया है, मानस की उपयोगिता है। तुलसीदास ने सम्प्रदाय में रहकर उसका खण्डन किया। रामेश्वर में राम से शिव की स्थापना कराई। उनकी जो समन्वयवादी दृष्टि थी, उसने सम्प्रदायवाद को नकारने की चेष्टा की। आज उसकी बड़ी आवश्यकता है। आज देश जितना खण्डित है, उतना कभी नहीं था। हमारी संस्कृति की विविधता को उन्होंने एक सूत्र में पिरोया और एकता दी। विचारक और साधक के लिए भी उन्होंने बहुत कुछ किया। उन्होंने समाज को ऐसे संयम में बांधा जो प्रिय लगता है। रामचरितमानस की जो प्रेरणा है उसे कोई नकार नहीं सकता। उसे कभी कोई अस्वीकार नहीं कर सकेगा। लक्ष्य ऊंचा रहता है। हम वहां तक न पहुंचे तो भी जहां तक जा सकते हैं, जाएं। यदि हम रामचरितमानस के कर्तव्यबोध, मर्यादा तथा शौर्य की उपासना का विवेचन करें तो वह मंगलकर्त्ता है और हम उसे युग के अनुरूप पाते हैं।

रामचरितमानस चार सौ वर्ष से परीक्षा देता रहा है और खरा सोना होकर निकला है। वह ऐसा सन्देश देता है, जो जीवन की विविधताओं में मानवीय सम्बन्धों के उद्दात्त जीवन की रचना करता है। आज के युग में देश की एकता, सांस्कृतिक एकता व मानवीय उद्दात्तीकरण के लिए उससे प्रेरणा लें।

नाना भांति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा॥

रामचरितमानस दिव्य प्रेरणा का महान ग्रन्थ

—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

रामचरितमानस मध्यकाल का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। आज से लगभग चार सौ वर्ष पहले गोस्वामी तुलसीदासजी ने इसे लिखना प्रारम्भ किया था। इन चार सौ वर्षों में यह ग्रन्थ देश और काल की सीमा अतिक्रम करके संसार में समादृत हुआ है। यह सच्चे अर्थों में कालजयी ग्रन्थ है। प्रत्येक ग्रन्थ भाषा और अभिव्यक्ति में अपने काल से प्रभावित होता है। रामचरितमानस भी है, परन्तु बहुत-थोड़े से ग्रन्थ इस सीमा को अतिक्रम करके सर्वकाल के सहृदयों को प्रभावित करने में समर्थ होते हैं। उनके भीतर कुछ ऐसा होता है जो सीमातीत होता है। यह लोकोत्तर तेज संसार के गिने-चुने ग्रन्थों में ही उपलब्ध होता है, यही कारण है कि वह देश और काल की सीमा पार करके समस्त संसार के सहृदयों को प्रभावित करने में समर्थ हुआ है।

रामचरितमानस के लेखक कविवर तुलसीदास जिस काल, समाज और देश में पैदा हुए उससे वे प्रभावित थे। उनका व्यक्तिगत जीवन भी किसी-न-किसी रूप में उनमें स्वीकृत विचारों को रूप दे रहा था, इसलिए वे अपने देश-काल और समाज के संस्कारों और व्यक्तिगत रुचि, कुंठा और झिझक आदि से प्रभावित थे। रामचरितमानस और उनके अन्य ग्रन्थों के आलोचकों ने इन बातों पर बहुत विचार किया है और भविष्य में भी करते रहेंगे, परन्तु इन सब सीमाओं के भीतर रहकर भी उनमें एक अलौकिक दीप्ति थी जो सीमा में नहीं बंध सकती। जिस प्रकार दीपक की लौ दिया, तेल, बाती और हवा के कम्पन से प्रभावित होते हुए भी इन सीमाओं से बाहर दूर तक अपनी दीप्ति बिखेर सकती है, कुछ उसी प्रकार व्यक्ति-कवि के भीतर जलने वाली दिव्य लौ भी अपनी दीप्ति देश, काल और सीमा का अतिक्रम करके प्रकाशित करती रही है।

लोकचित्त के संशय का शमन

ऐसा लगता है कि तुलसीदास के सामने तत्कालीन समाज में प्रचलित एक बड़ा भारी सन्देह मुख्य रूप से उनके चित्त को आन्दोलित किए हुए था। उनका प्रयत्न मुख्य रूप से लोकचित्त के सन्देहों को उखाड़ देना था। वस्तुतः सन्देह के कारण ही विषाद उत्पन्न होता है। रामचरितमानस के भारद्वाज, पार्वती, गरुड़ आदि मुख्य श्रोताओं के मन में संशय-जनित विषाद उत्पन्न हुआ था। यह सन्देह था कि जो ब्रह्म सब प्रकार की धारणाओं से ऊपर है, व्यापक है, निर्गुण है, अजन्मा है, जिसे श्रुति नेति-नेति कहकर बखानती है वह क्या मनुष्य के रूप में अवतार धारण कर सकता है? इस सन्देह का उन्मूलन तुलसीदास का एक लक्ष्य था। जब तक यह सन्देह उन्मूलित नहीं होता तब तक विषाद का शमन भी नहीं होता। यह एक सामयिक प्रश्न था। तुलसीदास के पूर्ववर्ती महान निर्गुणवादी सन्तों ने सगुण राम का प्रत्याख्यान किया था और लोकचित्त में ऐसा संशय उत्पन्न किया था। यह एक निश्चित देश-

काल में उत्पन्न स्थिति थी। इस संशय का उच्छेद, ऊपर से देखने में, एक सामयिक प्रश्न था। तुलसीदास के चित्त में कुछ ऐसे संस्कार थे जो इस संशय को मनुष्य के लिए हानिकारक मानते थे। यह एक प्रकार का द्वन्द्व था जो बाह्य समाज में बहु-प्रचारित सिद्धान्त ग्रौर तुलसीदास के व्यक्तित्व, चित्त में प्रतिष्ठित रुचि ग्रौर संस्कार के संघर्ष से उत्पन्न हुग्रा था। रामचरितमानस के निर्माण में इस द्वन्द्व का महत्वपूर्ण स्थान था, परन्तु यह सामयिक तथ्य ही सब कुछ होता तो रामचरितमानस खण्डन-मण्डन के रूप में लिखे हुए ग्रन्थों के समान ग्रल्पकालीन प्रभाव ही छोड़ जाता, परन्तु ऐसा नहीं हुग्रा। इस द्वन्द्व ने तुलसीदास के संवेदनशील चित्त को केवल खण्डन-मण्डन की ग्रोर प्रवृत्त नहीं किया, बल्कि उनकी रचनात्मक प्रतिभा को झंकृत कर दिया जिससे शाश्वत मानवीय मूल्यों का ग्रद्भुत रागात्मक सर्जन हुग्रा। शत-तार वीणा को यद्यपि छेड़ने वाली चीज बहुत मामूली-सी होती है, परन्तु उसके एक तार के झंकृत होने से ग्रन्य ग्रनेक तार झनझना उठते हैं ग्रौर उस मोहक संगीत का प्रादुर्भाव होता है, जो छेड़ने वाली वस्तु को एकदम ग्रविभूत करके ग्रपूर्व रागात्मक संगीत की सृष्टि करती है। उस युग के इस मामूली से प्रश्न ने तुलसीदास के चित्त को ऐसा झकझोर दिया कि उनकी सम्पूर्ण सत्ता ही उमड़ उठी। वह मनुष्य मात्र के रागात्मक चित्त के साथ एकमेक होकर उन चिन्मय मूल्यों की रचना कर सकी जो ग्रपूर्व कहे जा सकते हैं। भारतवर्ष की साधना का जो सर्वोत्तम है, जो कुछ महान् है, जो कुछ सरस है ग्रौर जो कुछ भव्य है वह इस बहाने ग्रभिव्यक्ति पाने को व्याकुल हो उठा। इस उदात्त भव्य ग्रभिव्यक्ति में ही रामचरितमानस की महिमा है। देश ग्रौर काल की सीमा में बंधा हुग्रा तुलसीदास का व्यक्ति-रूप भी उसमें जहां-तहां प्रकट ग्रवश्य हुग्रा ग्रौर कई बार उस सीमित ग्रभिव्यक्ति ने भिन्न-भिन्न श्रेणी के लोगों को क्षुब्ध ग्रौर उत्तेजित भी किया है। परन्तु रामचरितमानस की दिव्य ज्योति में यह छोटे-मोटे धब्बे कोई बाधा नहीं उत्पन्न कर सके। वे हैं, क्योंकि उनका होना रोका नहीं जा सकता था। परन्तु रामचरितमानस का निर्माण, उनसे ग्रलग दिव्य ग्रलौकिक तेज से हुग्रा है। कभी-कभी लोग उन छोटी-छोटी बातों को लेकर ही झगड़ते हैं। वे भूल ही जाते हैं कि रामचरितमानस का लक्ष्य इन बातों से कहीं ग्रधिक ऊंचा है। वह मनुष्य को उस लक्ष्य तक ले जाता है जिससे बड़ा लक्ष्य ग्रौर कुछ हो ही नहीं सकता।

सामंजस्य एवं ग्रविरोध

तुलसीदास केवल ज्ञान का ग्रन्थ नहीं लिख रहे थे। मनुष्य के नित्य जीवन में घटने वाले ईर्ष्या-द्वेष, सुख-दुःख ग्रौर लोभ-मोह के विकारों के भीतर से उन्होंने परम लक्ष्य की प्राप्ति की ग्रोर ग्रपने पाठक को ले जाना चाहा। इसलिए उनका यह ग्रन्थ शुष्क ग्राचार-संहिता या थोथे उपदेशों की पोथी नहीं है, वह मनुष्य जीवन की गहराई में उतरा है ग्रौर ग्रत्यन्त सहज भाव से उसे रामोन्मुख करता रहा है—राम, जो मनुष्य की समस्त, ग्राशा-ग्राकांक्षाग्रों का सर्वोत्तम केन्द्र है। वहां काम, क्रोध, द्वेष, मोह ग्रादि टिक नहीं सकते। राम एक ऐसा सूर्य है जिसके सामने मोह-रूपी अन्धकार की कल्पना नहीं की जा सकती। परन्तु यह राम हमारे दैनन्दिन जीवन के ग्रनुभवों के भीतर से उजागर हुग्रा है। वह मनुष्य रूप में ग्रवतरित हुग्रा है ग्रौर मनुष्य की सारी कमजोरियों ग्रौर विकारों के भीतर उज्ज्वल ग्रालोक के रूप में निकलता चला गया है। वह ज्ञेय बनकर नहीं, बल्कि ग्रनुभव-योग्य होकर हमें ग्राकर्षित करता है। वह केवल ग्रनादि, ग्रनन्त ग्रौर व्यापक सच्चिदानन्द मात्र नहीं है, बल्कि शील, सौजन्य ग्रौर मर्यादा का ग्रधिष्ठाता भी है; वह केवल ज्ञान ग्रौर उपासना का विषय नहीं है, बल्कि प्रेम ग्रौर भक्ति का भी ग्राश्रय है; वह केवल संसार की ग्रपवित्रताग्रों के वैराग्य की भावना का उत्पादयिता नहीं है, बल्कि सब प्रकार की मानवीय दुर्बलताएं भी उसे समर्पित होकर धन्य हो जाती हैं। यह राम सब प्रकार से मनुष्य होकर भी परब्रह्म हैं।

रामचरितमानस के राम शोभा ग्रौर सौन्दर्य के ग्रागार हैं, प्रेम के वश्य हैं, शौर्य ग्रौर पराक्रम के निधान हैं, वे ग्रारतिहरण ग्रौर शरण-सुखद हैं। नर-भूपाल रूप में दिखाई देने पर भी वे साक्षात् परब्रह्म हैं ग्रौर समस्त देवताग्रों द्वारा सेवित हैं। इन विविध रूपों में तुलसीदास ने ग्रद्भुत सामंजस्य ग्रौर ग्रविरोध दिखाया है। ऐसा चमत्कार कोई ग्रलौकिक शक्ति सम्पन्न कवि ही कर सकता था।

जन मन मानस हंस

सारे संसार में भक्तों में भगवान दो रूप में स्वीकार किये जाते

हैं—एक तो गुणातीत और समस्त शक्तियों के उत्स और दूसरी ओर भगवान भक्तों के स्वभाव के अनुसार उनके हृदय में ही अवतीर्ण होते हैं। वे माता, पिता, पुत्र, स्वामी, सखा, प्रिय आदि के रूप में भक्ति भावना के अनुरूप रहा करते हैं और प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव और आकांक्षाओं के अनुसार उसके हृदय में आविर्भूत होते हैं। कभी-कभी इसे व्यक्तिगत भगवान भी कहा जाता है। तुलसीदास इन दोनों रूपों को अच्छी तरह स्वीकार करते हैं, परन्तु उनके सामने एक तीसरा मार्ग भी है। भगवान लोकचित्त में किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रहते हैं। तुलसी-कालीन भारतवर्ष में समष्टि चित्त में वह दशरथ के पुत्र राम के रूप में प्रतिष्ठित थे। यह परम्परा-क्रम से समष्टिचित्त में प्रतिष्ठित राम हैं। तुलसीदास इस 'जन मन मानस हंस' रूप की उपेक्षा नहीं करते, बल्कि पूरा बल देकर उसे व्यक्तिगत भगवान और निरपेक्ष भगवान के समान ही आदर देते हैं। समष्टि-चित्त में बसे हुए इस राम का विविध लीलाओं के रूप में उद्दात्तीकरण तुलसीदासजी का प्रिय कार्य था। जो राम जन-मानस में अनादिकाल से प्रतिष्ठित हैं उसे तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस में पूर्ण वैभव के साथ निखारा है। रामचरितमानस इसीलिए भगवत्स्वरूप को पूर्ण रूप में दिखाने वाला महान ग्रन्थ है, क्योंकि वह लोकचित्त के साथ ताल मिलाकर चलता है और भगवत्स्वरूप के उत्तम और वैभवशाली पक्ष को उजागर करता है। लोकचित्त में प्रतिष्ठित इस राम को जनता के दैनन्दिन संघर्षों और विषम परिस्थितियों के भीतर से पूर्णब्रह्म के रूप में प्रकाशित करना तुलसीदास की कठिन साधना थी। एक ओर जहां राम परात्पर ब्रह्म हैं वहीं दूसरी ओर वे सहजभाव से जनता के अपने प्रतिनिधि भी हैं। रामचरित उस भक्ति को श्रेष्ठ समझता है जिस में भक्त के मन में यह बुद्धि कभी भी नहीं टलती कि भगवान सचराचर रूप-राशि ही हैं और मैं (भक्त) इस सचराचर रूप का सेवक हूं। लोकमानस के साथ राम के घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए होने के कारण तुलसीदास के मत में सेवक-सेव्य-भाव ही श्रेष्ठ है।

लोक-सुलभ लक्ष्य

जीवन में मनुष्य को अनेक प्रकार के सुख-दुःख और आशा-आकांक्षा के भीतर से गुजरना पड़ता है। प्रत्येक मनुष्य किसी-न-किसी दुर्बलता का शिकार है। इन दुर्बलताओं से पार पाना कठिन है। एकमात्र उपाय यह है कि अपनी सारी कमजोरियां भगवान को समर्पित करके मनुष्य उनसे मुक्ति पा ले। जो कोई भी राम के सम्मुख हो जाता है उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, परन्तु जो राम के विमुख हैं उसके सारे वैभव व्यर्थ हो जाते हैं। राम का साम्मुख्य प्राप्त करना रामचरितमानस का लक्ष्य है। कोई भी व्यक्ति, चाहे वह ऊंचे कुल में जन्मा हो या नीच कुल में, उत्तम योनि में पैदा हुआ हो या अधम योनि में, सात्विक शरीर का अधिकारी हो या तामस शरीर का, सभी राम के सम्मुख आकर कृतार्थ हो जाते हैं। जो सम्मुख नहीं आ पाते उनका जन्म अकारथ सिद्ध होता है; रामचरितमानस ने इस महान लक्ष्य को लोक-सुलभ करने में आश्चर्यजनक ढंग से पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

यह महान ग्रन्थ पिछले कई सौ वर्षों से मनुष्य के चित्त में उदात्त मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करता रहा है। इसकी भाषा, अभिव्यक्ति और भाव-प्रेषण-क्षमता अपूर्व हैं। यह रामचरितमानस एक सुनिश्चित योजना से लिखा हुआ काव्य है। इसके प्रत्येक शब्द को कवि ने अच्छी तरह से तोलकर प्रयोग किया है। यदि आरम्भ में कोई शब्द किसी निश्चित अर्थ में प्रयुक्त हुआ है तो अन्त तक उसका निर्वाह हुआ है। ऐसा लगता है कि कवि पूर्ण रूप से सचेत कलाकार है। परन्तु यह 'सचेत-भाव' अभ्यास से नहीं बल्कि व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विसर्जन से आया है। सत्य यह है कि रामचरितमानस का कवि पूर्ण रूप से अपने व्यक्तित्व को अपने लक्ष्य में निमज्जित कर सका है। यह उस श्रेणी का काव्य है जिसकी प्रत्येक उक्ति किसी दिव्य प्रेरणा से निकली है। जैसा कि आरम्भ में कहा गया है, जहां तक व्यक्ति तुलसीदास का सम्बन्ध है, वे अपने युग और समाज से प्रभावित हैं, परन्तु उनका व्यक्तित्व उस महान् लक्ष्य में बिल्कुल निमज्जित हो गया है जिससे बड़े लक्ष्य की कल्पना नहीं की जा सकती। यही कारण है कि रामचरितमानस उस दिव्य कोटि का ग्रन्थ बना है जो एक ही साथ काव्य और शास्त्र दोनों ही होते हैं। आज से चार सौ वर्ष पूर्व के इस महान ग्रन्थ के प्रणेता कवि को हम अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

मानस का सांस्कृतिक पक्ष

—डा० संसारचन्द्र

संस्कृति शब्द हिन्दी में अंग्रेजी के कल्चर शब्द के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। उसका अर्थ है रुचियों और भावनाओं का उदात्तीकरण। नर-विज्ञान में संस्कृति का प्रयोग व्यापक अर्थ में मिलता में। इस के अनुसार वे सब बातें जो हम समाज के सदस्य होने के नाते सीखते हैं, 'संस्कृति' कहलाती है। इस प्रकार नर-विज्ञान में सभ्यता और संस्कृति का एकीकरण किया गया है। सभ्यता का सम्बन्ध मुख्यतः शारीरिक उपलब्धियों से है, जिन के द्वारा मानवजीवन सुखी और उत्तम बनता है। उसमें नियमितता और व्यवस्था आती है। संस्कृति मानव-उत्थान की प्रगति का अग्रिम चरण है। इस अर्थ में संस्कृति मानवीय गुणों का वह समुदाय है, जो व्यक्तित्व को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाता है। इसे जीवन का दृष्टिकोण कहा जा सकता है। इसमें कृपा, उदारता, प्रेम, सत्य, शिव, सुन्दर आदि शाश्वत गुण सन्निहित होते हैं। मूर्ति, चित्र, संगीत, नृत्य तथा काव्यादि कलाएं इन्हीं गुणों की चरम परिणति का निष्कर्ष हैं। इन्हीं के माध्यम से किसी देश अथवा जाति में राष्ट्रीय विचारों, भावों, आशाओं, आकांक्षाओं आदि का उदय होता है। वे सब अपनी समग्रता में संस्कृति का रूप ग्रहण करते हैं। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि संस्कृति में चिन्तन तथा कलात्मक सर्जन की सभी क्रियाएं रूपग्रहण करती हुई मानव व्यक्तित्व को अर्थ देकर समृद्ध बनाती हैं। इस दृष्टि से विभिन्न शास्त्र तथा दर्शन आदि में उपलब्ध चिन्तन को संस्कृति की संज्ञा दी जा सकती है। मोक्ष साधन तथा पूर्णत्व की खोज भी संस्कृति का अंग माना जायेगी। संक्षेप में मानव जीवन तथा व्तक्तित्व के वे रूप किसी देश की संस्कृति के अन्तर्गत ग्रहण किए जाएंगे, जिन्हें देश-विदेश में महत्वपूर्ण मूल्यों का अधिष्ठान समझा जाता है।

मनुष्य एक ऐतिहासिक प्राणी है। उसे अपनी जीवन यात्रा में अतीत के दाय से प्रेरणा एवं स्फूर्ति मिलती है। निस्संदेह अतीत से अलग कर वर्तमान का कोई मूल्य नहीं रहता। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व-निर्माण में उसके विगत जीवन के अनुभव एवं उपलब्धियों का योगदान होता है, उसी प्रकार किसी जाति अथवा देश के जीवन में सांस्कृतिक धरोहर का अपना स्थान होता है। यह अलग बात है कि मानव जीवन के अनुभव एवं उपलब्धिओं का नैरन्तर्य केवल एक जीवन तक चलता है, जबकि संस्कृति पीढ़ी-दर-पीढ़ी संक्रमित होकर अपने स्थैर्य एवं अखण्डता की रक्षा करती है।

सांस्कृतिक वैभव की दृष्टि से भारत शिरोमणि देश है। इस देश के राजाओं ने स्वेच्छा से सिंहासन छोड़े। प्रजागण भी घरबार छोड़, वानप्रस्थी होते रहे। यह तपस्या और आध्यात्मिकता का देश है। विश्व साहित्य का आदिम ग्रन्थ ऋग्वेद यहीं पर हिमालय की गोद में लिखा गया। गंगा का उज्ज्वल वारिप्रवाह भारतीय गौरव का साक्षी

है। स्वर्गीय पंडित नेहरू के शब्दों में "गंगा की कहानी भारत की संस्कृति की कहानी हैं। यह जीवन की समृद्धि और परिपूर्णता तथा निवृत्ति और त्याग एवं जन्म और मरण की कहानी है।"

जीवन्त संस्कृति

भारतीय संस्कृति एक जीवन्त और बिकासशील संस्कृति है। भारत के लम्बे इतिहास में इस पर अनेक प्रभाव पड़ते हैं, जिसके फलस्वरूप इसका स्वरूप न्यूनाधिक परिवर्तित होता रहा है। भारतवर्ष अनेक जातियों, धर्मों तथा संस्कृतियों का संगम स्थल बनता रहा है। इस देश में अनेक धर्म-प्रवर्तकों ने जन्म लिया। यहां दो धर्म विशेष रूप से पनपे और फैले हैं—एक तो वेदों और उपनिषदों पर आधारित वैदिक धर्म, दूसरा वेद-विरोधी बौद्धधर्म। बाद में ईसाई धर्म और इस्लाम भी यहां की भूमि में प्रविष्ट हुए। यहां यूनानी, कुशन, शक, हूण, पठान, मुगल, पुर्तगाली, फ्रांसीसी और अंग्रेज जातियों ने भी पदार्पण किया और बसने का प्रयत्न किया। इनमें से कुछ जातियों सचमुच यहां बस कर जनता में घुलमिल गईं। इसके विपरीत, अंग्रेज आदि कुछ जातियां अपनी पृथक सत्ता बना कर रहीं, परन्तु वे भी हमारी संस्कृति पर अपने प्रभावचिह्न छोड़ गईं। वैदिक संस्कृति इस देश की सबसे व्यापक एवं समृद्ध संस्कृति है जिसे उपर्युक्त सभी जातियों तथा उनके धर्मों से सम्बन्धित अनेक सांस्कृतिक उपधाराओं ने पुष्ट और सम्पन्न किया है।

भारतवर्ष में जन्म लेकर लंका, तिब्बत, चीन, जापान आदि देशों तक फैल जाने के कारण बौद्ध धर्म यद्यपि वैदिक हिन्दू धर्म की अपेक्षा विशेष प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण बन गया, किन्तु उसकी सभी प्रधान विशेषताएं हिन्दूधर्म में समाहित हो गईं। बौद्धों के अहिंसावाद को जिस सीमा तक भारतवर्ष में वैष्णवों ने अपनाया उस सीमा तक लंका, तिब्बत, चीन या जापान के बौद्ध नहीं अपना सके। इन देशों के बौद्ध तो आमिषभोजी बने रहें। वास्तव में मांसाहार का परित्याग भारतीय बौद्धों, जैनियों तथा कुछ अन्य हिन्दू सम्प्रदायों की निजी विशेषता है। बौद्धों ने जिन कर्मकाण्डों तथा हिंसात्मक यज्ञों का विरोध किया, उसका विरोध तो उपनिषदों में ही प्रारंभ हो गया था। बौद्धों के निर्वाण और हिन्दुओं की मुक्ति में विशेष अन्तर नहीं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि हमारे देश में मुक्ति-साधन के लिए इहलोक तथा परलोक के भोगैश्वर्य के प्रति अनासक्ति को नितान्त आवश्यक समझा गया। विभिन्न धर्म-प्रवर्तकों की शिक्षाओं का यह सामान्य अंश है।

कालान्तर में जहां बौद्ध धर्म इस देश से लुप्तप्राय हो गया वहां इस्लाम के आने से पूर्व दूसरा कोई धर्म हिन्दू धर्म के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में इस देश में प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सका। बौद्ध तथा जैन धर्म ने जहां संसार त्याग के सम्बन्ध में नूतन चिन्तन दिया, वहां गृहस्थ जीवन के लिए किसी नई क्रान्तिकारी व्यवस्था का निर्माण नहीं किया। अपनी-अपनी धरती से दूर होने के कारण इस्लाम तथा ईसाई धर्म भी सांस्कृतिक दृष्टि से कोई व्यापक निर्माण कार्य नहीं कर सके। इस्लाम ने हमारी कला और साहित्य को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया, किन्तु दर्शन-क्षेत्र में उसकी कोई विशेष उपलब्धि दिखाई नहीं दी। इस दृष्टि से ईसाइयों का प्रभाव तो यहां और भी कम रहा। यूरोप से जो सांस्कृतिक चेतना प्रविष्ट हुई वह भारतीय चेतना और संस्कृति का अंग बन कर ही विलीन हो गई। इस प्रकार भारत में जन्मी या पनपी विभिन्न संस्कृतियों से प्रभावित वैदिक संस्कृति का जो विकासशील रूप सामने आया उसी को हम भारतीत संस्कृति की संज्ञा देते हैं।

विश्व बन्धुत्व

उपर्युक्त विवेचन के परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति पर दृष्टिपात करने से उसकी कुछ ऐसी मौलिक विशेषताएं सामने आती हैं, जो इसे अन्य देशों की संस्कृतियों से अलगाती हैं। इस संस्कृति की मुख्य विशेषता इसकी विश्वबन्धुत्व की भावना है। प्रारम्भ से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' इसका उद्घोष रहा है। इसीलिए भारतीय संस्कृति समन्वय-भावना से ओतप्रोत है। यहां धार्मिक पूजा-उपासना के अनेक रूप साथ-साथ चलते रहे हैं। स्वयं हिन्दू धर्म के अन्तर्गत ज्ञानमार्ग, योगमार्ग, भक्तिमार्ग, कर्ममार्ग आदि अनेक मार्ग स्वीकृत किये गये हैं। इन विविध मार्गों के प्रति सहिष्णुता एवं समन्वय-भावना भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता है।

यहां यह प्रश्न उठ सकता है कि भारतीय संस्कृति का अध्ययन राम-

चरित मानस के आधार पर करना कहां तक समीचीन है। पाश्चात्य विद्वानों ने तो भारतीय संस्कृति के मर्म को खोजने के लिए यहां के दार्शनिक साहित्य का आश्रय लिया है। यह भी सत्य है कि हमारे देश में दार्शनिक जिज्ञासा और चिन्तन का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। फिर भी हमारा विश्वास है कि भारतीय धर्म और दर्शन प्रत्यक्ष रूप से यहां की संस्कृति का पर्याप्त प्रतिफलन नहीं करते। भारतीय धर्म तथा दर्शन का अध्येता यह तो जान सकता है कि मोक्ष या निर्वाण-पथ के पथिक की संवेदना एवं जीवन कैसा होता है, किन्तु वह देश के निन्यानवें प्रतिशत लोगों के सम्बन्ध में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त नहीं कर सकता। उसके लिए यहां के जीवन की विविधता और उसके मूल्यों का ज्ञान कदाचित संभव नहीं होता। इसलिए यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि किसी देश की संस्कृति को समझने के लिए केवलमात्र उसके दर्शन तथा धर्म-ग्रन्थों को जानना ही पर्याप्त नहीं। किसी देश अथवा जाति की संस्कृति को समझने का सबसे महत्वपूर्ण आधार वहां का काव्य साहित्य होता है। जहां तक रामचरित मानस का सम्बन्ध है, इसमें "एक पंथ दो काज" की उक्ति चरितार्थ होती है। यह केवल मूर्धन्य काव्य-ग्रंथ ही नहीं, प्रत्युत एक उच्चकोटि का धर्म-ग्रन्थ भी है। अतः ऐसे धर्म-प्राण काव्य-ग्रंथ को छोड़कर भला और कौन-सा ग्रंथ भारतीय संस्कृति का सच्चा निदर्शक सिद्ध हो सकता है।

सांस्कृतिक महाकाव्य

इस दृष्टि से रामचरित मानस उत्कृष्ट सांस्कृतिक महाकाव्य है। एक श्रेष्ठ सांस्कृतिक महाकाव्य के अधिकांश लक्षण इस पर पूरी तरह घटित होते हैं। सर्व-प्रथम किसी सांस्कृतिक महाकाव्य का मूलस्वर सार्वभौम होता है। उसमें मानव-जीवन की उन संभावनाओं एवं मूल्यों का उद्घाटन होता है, जो व्यापक एवं सर्वग्राह्य होते हैं। इससे मानव-जीवन विपुल, विस्तृत एवं समृद्ध बनता है। जिन काव्यों की जीवन संभावनाएं किसी निश्चित जाति, वर्ग एवं काल-विशेष तक फली भूत होकर निष्क्रिय हो जाती हैं, वे काव्य सांस्कृतिक निकष (कसौटी) पर खरे नहीं उतरते। एक सांस्कृतिक आख्याता कवि के लिए किसी वर्ग, सम्प्रदाय आदि से प्रतिबद्ध होकर अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करना संभव नहीं होता। यदि उसका कविकर्म एक सामुदायिक योजना की परिणति के रूप में स्वीकृत नहीं होता तो वह सांस्कृतिक काव्य के महामहनीय आसन पर अभिषिक्त नहीं हो सकता।

मुझे यह कहते हुए परम हर्ष हो रहा है कि इस दृष्टि से तुलसी का महाकाव्य विश्लेषण की तीव्र-से-तीव्र आंच सह सकता है। स्मरण रहे कि विभिन्न देशों एवं जातियों की नैतिक, धार्मिक एवं दार्शनिक मान्यताएं भिन्न होती हैं, जो एक विशिष्ट सांस्कृतिक जीवन-दृष्टि को जन्म देती हैं; परन्तु जहां तक मानस का सम्बन्ध है वह एक देशीय न होकर सार्वदेशीय है। इसमें जिस चारित्रिक साधुता, उदार सहृदयता एवं श्लाघ्य मानवता का आदर्श मिलता है, वह सभी देशों अथवा जातियों के लिए ग्राह्य है। तुलसी का मानस देशकाल की सीमित कारा में आबद्ध नहीं हो सकता। इसीलिए डा० ग्रियर्सन ने तुलसीदास को भगवान बुद्ध के बाद दूसरा लोक-नायक माना है। उनका कथन है कि "भारतवर्ष के इतिहास में तुलसीदास के महत्व के सम्बन्ध में 'इदमित्थम्' नहीं कहा जा सकता। उनकी रामायण के गुणों को साहित्यिक दृष्टि से एक ओर रखकर यह बात उल्लेख्य है कि यह ग्रन्थ यहां की समस्त जातियों ने अपनाया है।" इससे स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ उस भारतीय संस्कृति का उदात्त प्रेरणा स्रोत है, जो वस्तुतः एक सार्वभौम वैश्विक संस्कृति की संभावनाओं की पूर्ति करती है।

नितान्त मौलिक

तुलसी के काव्य में संस्कृति का जो रूप उभरा है वह नितान्त मौलिक, अनन्य एवं असाधारण है। यह उस संस्कृति से पर्याप्त अंशों में भिन्न ठहरती है, जो व्यास, वाल्मीकि तथा कालिदास के काव्यों में सुरक्षित है। इन महान कवियों की सांस्कृतिक चेतना व्यापक होते हुए भी सर्वांगीण नहीं कही जा सकती। व्यास में भारतीय संस्कृति की धर्मपरायणता पर बल है, तो वाल्मीकि में चरित्रमूलकता का स्वर मुखर होता है। कालिदास में जीवन और जगत की सौन्दर्येषणा का अखंड प्रसार है; जबकि तुलसी ही एकमात्र ऐसे कवि हैं जिन्होंने परम्परागत सांस्कृतिक दाय को अपने कविकर्म में इस समग्रता के साथ रूपायित किया है कि तुलसी-काव्य और भारतीय संस्कृति परस्पर पर्याय हो गये हैं। वास्तव में तुलसी-संस्कृति मुख्यतः एक आध्यात्मिक संस्कृति है। वैदेशिक संस्कृतियां मूलतः भौतिक

हैं, उनमें मनुष्य को प्राकृतिक परिवेश के एक अंगमात्र तक सीमित किया गया है। मानस में मानवमात्र की मूलभूत आध्यात्मिकता मूर्तिमती होकर सामने आई है। यह मानव तुलसी के काव्यात्मक संस्पर्श से देशकाल आदि के बन्धनों से विनिर्युक्त होकर विश्व मानव के रूप में निर्मित हुआ है। वैदेशिक संस्कृति के अनुसार मानव जीवन की परिधि देह-बुद्धि तक ही समाप्त हो जाती है। इसे विराट जगत तक व्यापक रूप में देखने की क्षमता इस संस्कृति की सबसे बड़ी सीमा है। इसके विपरीत भारतीय सांस्कृतिक अभियान ने न केवल इसके संकीर्ण अभावों पर विजय प्राप्त की है, बल्कि इसे वह उत्तुंग गरिमा प्रदान की है जो विश्व के इतिहास में सर्वथा अनुपमेय है।

वस्तुतः मानस-संस्कृति हजारों वर्षों से चली आ रही भारतीय संस्कृति की सुसम्पन्न परिणति है। इस संस्कृति का अतीत प्रागैतिहासिकता की कुहेलिका में छिपा है। इसका आविर्भाव सर्वप्रथम हम सिन्धु घाटी के अवशेषों में देखते हैं। यहां से अपनी लम्बी यात्रा प्रारंभ कर वेद, पुराण, बौद्ध, सन्त आदि संस्कृतियों को समेटती, अनेक क्रान्तियों एवं संक्रान्तियों को आत्मसात् करती हुई, यह अन्ततः तुलसी तक पहुंचती है। इस प्रकार तुलसी में हम विभिन्न सांस्कृतिक तत्वों का अपूर्व समन्वय देखते हैं। हमारे सांस्कृतिक उत्थान की यह एक चरम उपलब्धि है, जिसमें वैदिक, अवैदिक, ईश्वरवादी, अनीश्वरवादी, आर्ष, आदि सभी प्रकार की चिन्तन-पद्धतियां नानाविध संस्कृतियों के सामंजस्य से एक विश्वसंस्कृति की क्षमता एवं औदार्य लेकर सामने आती हैं।

तुलसी-संस्कृति

तुलसी-संस्कृति से यह अभिप्राय कदापि नहीं कि यह संस्कृति तुलसी की एकान्त आविष्कृति है। इसकी सारभूत सामग्री परम्परागत और प्राचीन है, परन्तु इसकी विशेषता यह है कि यह तुलसी का अनुभूत सत्य बनकर सामने आयी है। तुलसी ने स्वयं भी इस सांस्कृतिक दाय को साभार स्वीकृत किया है। जब वे 'नाना पुराण निगमागम सम्मत' कहते हैं तो उनका उद्देश्य इसकी विविधता और व्यापकता व्यंजित करना है। वास्तव में इसकी निधि सब धर्मों की सारभूत पूंजी है। इसमें भारतीय चेतना का ही प्रसार नहीं मिलता, प्रत्युत मानवमात्र का अजस्र चिन्तन अपनी पूर्ण समग्रता एवं नैरन्तर्य में प्रस्फुटित होता है। इसमें मानव समस्याओं के समाधान वैश्विक स्तर पर हुए हैं। तुलसी के राम भी इसी सार्वभौम सत्य के प्रतीक हैं। औपनिषदिक भाषा में वह 'सत्यस्य सत्यम्,' 'एकं अद्वितीयम्' हैं। वह परम सूक्ष्म, चिन्मय, सच्चिदानंद और ब्रह्म रूप हैं। अखिल ब्रह्मांड में अनेक सर्ग, स्थिति और प्रलय के बीच एकमात्र अपरिवर्तनीय सत्य हैं। तुलसी ने अपने राम को इसी रूप में परिभाषित किया है :

राम सच्चिदानंद दिनेसा, नहिं तहं मोह निसा लव लेसा।
सहज प्रकास रूप भगवाना, नहिं तहं पुनि विग्यान विहाना ।।
हरष विषाद ग्यान अग्याना, जीवधर्म अहमिति अभिमाना।
राम ब्रह्म व्यापक जगजाना, परमानंद परेस पुराना ।।
भक्त कल्प पादप आराम : तर्जन क्रोध लोभ मद काम : ।
अति नागर भव सागर सेतुः त्रातु सदा दिनकर कुल केतु : ।।
अतुलित भुजप्रतापबलधामः कलिमल विपुल विभंजन नामः ।
धर्म कर्म नर्मद गुण ग्रामः संतत शंतनोतु मम रामः ।।

हिन्दी को अपनाना

भारतीय संस्कृति के लिए यह शुभ घटना थी कि उसके महाकवि ने सर्वप्रथम संस्कृत का मोह त्याग कर जनभाषा हिन्दी अथवा अवधी में रामचरित मानस की रचना की। भारतीय संस्कृति के आख्यान के कारण ही संभवतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी को हिन्दी का सबसे बड़ा कवि माना है। वैसे यह महाकाव्य केवल हिन्दी का ही नहीं, समस्त उत्तर भारत का प्रतिनिधि सांस्कृतिक ग्रंथ कहा जा सकता है। रामचरित मानस में तत्कालीन भारतीय समाज की सबलताएं एवं दुर्बलताएं प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त हुई हैं। वास्तव में तुलसी के जनभाषा को अपनाने का अभिप्राय था, उनका जनता की अनुभूति के निकट आना। तुलसी की अनुभूति और संवेदना केवल राजाओं अथवा शिष्टों की संवेदना नहीं है। उनकी वाणी में जनहृदय का आवेग और संगीत मिलता है। भक्तिमार्ग वैसे भी जनता के लिए होता है, जबकि ज्ञानमार्ग कतिपय बुद्धिजीवियों के लिए ग्राह्य होता है। तुलसीदास का प्रथम अभिमत भक्ति का ही था, इसीलिए उन्होंने जनभाषा को अपने काव्य

का माध्यम चुना।

धर्म दृष्टि

तुलसी भारत के सभी कवियों में सबसे अधिक धर्मदृष्टि सम्पन्न कवि हैं। संभवतः वे हमारे देश के पहले महाकवि हैं जो मूलरूप में एक सन्त और महात्मा हैं। प्रसिद्ध दार्शनिक डा० देवराज के शब्दों में—"तुलसी के मानस का देश के हृदय पर जो प्रभाव पड़ा उसका एक महत्वपूर्ण करण था—उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व में सन्त एवं कवि का सम्मिलन। तुलसी में सन्त का व्यक्तित्व इतना प्रधान है कि उनके काव्य में शृंगार रस बहुत कुछ परिष्कृत ही नहीं हुआ है, बल्कि वहां से बहिष्कृत-सा हो गया है।"[1] यही कारण है कि मानस में सर्वत्र सात्विक आवेगों का ही निरूपण है। इसमें आपको कहीं भी ऐसी सामग्री नहीं मिलेगी जो आपके मन में विशुद्ध शृंगार भावना जागृत कर सके। राम का सौन्दर्य, स्नेह, श्रद्धा, वात्सल्य का उद्रेक तो करता है, परन्तु वह कहीं भी दृष्टि को वासना से ऊष्ण नहीं बनाता। सीता का भी भोली बालिका तथा जगज्जननी का रूप तो मिलता है, परन्तु उसके तारुण्य-चित्रण में तो कवि प्रायः संयत ही रहा है। इस प्रकार के सौन्दर्य चित्र महदंश तक ठण्डे एवं निर्विकार हैं, जिससे काव्य में विशेष धार्मिक विशुद्धता एवं निर्मलता आ गई है।

रामचरित मानस के नायक राम विष्णु के अवतार होते हुए भी ऐसे आदर्श महापुरुष हैं जिनका चरित्र अनुकरणीय है। वे सच्चे अर्थों में एक महात्मा—महान् आत्मा हैं। वे स्वप्न में भी किसी का अहित नहीं सोच सकते। जिनकी दृष्टि में परहित सम्पादन के समान कोई पुण्य नहीं, परपीड़न के समान कोई पातक नहीं, जैसा कि मानस के इस महामंत्र से स्पष्ट है :

परहित सरिस धरम नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अधिमाई॥

वस्तुतः राम के रूप में तुलसी ने एक ऐसे व्यक्तित्व की कल्पना की है जिसमें सहृदयता, करुणा, मित्रता, उदारता, त्याग आदि अशेष नैतिक गुण सम्पूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं। मानस में दो प्रकार के आदर्श चरित्र हैं—एक ओर राम हैं और दूसरी ओर उनके भक्त, जिनमें भरत प्रमुख हैं। मानस में कवि का प्रधान लक्ष्य राम के गुणगान तथा भक्तों के महत्व स्थापन द्वारा भगवद् भक्ति का प्रचार है। इसीलिए मानस में सन्त-समागम और हरिकथा का विशेष महत्व है। किन्तु राम का आदर्श सर्वसाधारण के लिए अनुकरणीय एवं ग्राह्य नहीं है। जहां तक राम के अलौकिक गुणों का सम्बन्ध है वह साधारण मनुष्य की सामर्थ्य से दूर हैं। ऐसी स्थिति में भरत जैसे भक्तों का चरित्र ही मानव गतिगम्य है। मानस के अनुसार भक्त को तो केवल भगवान की भक्ति के लिए ही जीवित रहना है। वह तो केवल किसी भूमिका-विशेष के निर्वाह मात्र के लिए ही संसार रूपी रंगमंच पर अवतरित हुआ है। इसके अतिरिक्त उसका कोई अस्तित्व नहीं। संजीवनी ओषधि लेकर लौटते हुए हनुमान जब भरत द्वारा अयोध्या में रोक लिए जाते हैं तो वहां उनसे यह जानकर कि लक्ष्मण मरण-शैय्या पर हैं, सुमित्रा को हर्ष और शोक दोनों का एक साथ अनुभव होता है। हर्ष का कारण केवल मात्र इतना ही है कि भक्त राम के प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा करके स्वर्ग सिधार रहा है। मानस में जनसाधारण के लिए सर्वत्र यही उपदेश है कि उन्हें भगवद्भक्ति के लिए ही जीवित रहना चाहिए।

निर्मूल धारणाएं

कहा जाता है कि आज मानस के नैतिक एवं सांस्कृतिक आदर्श प्रायः प्रभावहीन हो गये हैं, क्योंकि इस देश की धार्मिक तथा दार्शनिक मान्यताएं शिथिल पड़ गई हैं। हमारे विचार में मानस के सम्बन्ध में इस प्रकार की आशंका नितान्त निर्मूल है। मानस के सांस्कृतिक आदर्श एक ऐसी जीवन्त एवं शाश्वत गरिमा से मण्डित हैं कि युग-संक्रमण की विभीषिकाएं इन्हें कलुषित नहीं कर सकतीं। इनके आकर्षण की जड़ें इतनी गहरी हैं कि प्रबल-से-प्रबल झंझावात इन्हें विकम्पित नहीं कर सकते। सीता तथा लक्ष्मण का राम के साथ वन गमन, राम तथा भरत की राज्य विषयक निस्पृहता, हनुमान की निःस्वार्थ स्वामिभक्ति आदि ऐसे भव्य आदर्श मिलते हैं, जिनका महत्व आज के भौतिक युग में भी अक्षुण्य है। सत्य और न्याय के लिए त्याग एवं बलिदान की प्रवृत्ति

१. भारतीय संस्कृति : डॉ० देवराज पृ० २०२

मानवमूल्यों के बदलते हुए युगों में भी अपने गौरव का निर्वाह करती है। किसी भी युग के मानव-जीवन के उन्नयन एवं परिष्कार के लिए हम इसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। हमारा दृढ़ विश्वास है कि मानस के राम, लक्ष्मण, भरत, हनुमान आदि चरित्र मानव मनोवृत्तियों को युग-युग तक संस्कृत, उदात्त एवं अनुकरणीय बनाते रहेंगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

भक्ति की मिलन भूमि

तुलसी पर वर्ण-व्यवस्था के प्रबल पोषक होने का आक्षेप भी यदा-कदा सामने आता है। इसमें सन्देह नहीं कि वर्ण-व्यवस्था भारतीय संस्कृति का एक दुर्बल पक्ष है। हमारे देश को इसके अनेक दुष्परिणाम सहन करने पड़े हैं। वैदिक काल में संभवतः इस प्रकार की किसी सामाजिक व्यवस्था की कल्पना की जा सकती हो, परन्तु वेदोत्तर काल में तो इसने देश को अवनति के गर्त की ओर धकेला है। तुलसी के युग में भी वर्ण-व्यवस्था का पर्याप्त ज़ोर था। तुलसी स्वयं इसके प्रति आग्रहशील दिखाई देते हैं :

वर्ण धर्म नहिं आश्रमचारी श्रुति विरोध रत सब नर नारी।
द्विज श्रुति वंचक भूप प्रजासन कोउ नहिंमान निगम अनुसासन।।

किन्तु रामचरित मानस में वर्ण-व्यवस्था के प्रति विरोध के स्वर भी उभरे हैं। मानस के निषाद तथा शबरी के उपाख्यानों द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि भगवद् भक्त छोटी जाति का होते हुए भी अभिनन्दनीय होता है और उसके साथ खानपान में भी कोई प्रतिबन्ध नहीं है। तुलसी की दृष्टि में भगवद् भक्ति एक ऐसी मिलन भूमि है, जहां सब प्रकार के लौकिक भेदभाव लुप्त हो जाते हैं। वास्तव में तुलसीदास परम्परा निर्वाह के लिए ही वर्ण-व्यवस्था का कुछ समर्थन करते जान पड़ते हैं। किन्तु उनकी आंतरिक मनोवृत्ति इससे तालमेल स्थापित नहीं कर पाती। संभवतः इसका कारण उस समय की यह बलवती धारणा थी कि जातिपांति के भेदभाव निस्सार हैं और मनुष्य केवल आंतरिक शुद्धि से ही ऊपर उठता है।

वैराग्य के कवि नहीं

तुलसी के प्रति एक और प्रवाद चलता है कि वे वैराग्य के कवि हैं। उनका काव्य जीवन के प्रतिषेध का काव्य है। इसका अध्ययन मनुष्य को संसार से निष्क्रिय बनाता है। इसमें जीवन और जगत के प्रति पलायन-वृत्ति का संचार होता है। वास्तव में तुलसी साहित्य के प्रति इस प्रकार की धारणा कतिपय आलोचकों के एकांगी दृष्टिकोण का परिणाम है। इसका अभिप्राय है कि हम तुलसी को भौतिक धरातल पर विश्लेषित करते हैं। इस प्रकार हम जीवन के आंतरिक पक्ष की घोर अवहेलना करते हैं। तुलसी का भौतिकता के प्रति निषेध या विराग उसकी आत्मिक सम्पन्नता का प्रमाण है। वे तो केवल अपने राम के प्रति ही सराग हैं। उनकी बहिर्जगत के प्रति विराग की भावना प्रकारान्तर में राम के प्रति प्रगाढ़ अनुराग की भावना है। उनके लिए प्रकृति केवल राम के नाते ही सुरम्य है, अन्यथा उसमें कोई आकर्षण नहीं। भगवान के सम्पर्क में आते ही समूची प्रकृति शाश्वत सौंदर्य की एक दिव्य आभा से आलोकित हो उठती है। तुलसी ने वैराग्य को रामभक्ति के साधन रूप में लिया है, साध्य रूप में नहीं। इसी प्रकार ज्ञान की महत्ता भी तुलसी ने भक्ति के लिए ही घोषित की है और ज्ञान तथा वैराग्य को भक्ति के साथ समन्वित किया है :

"कहहिं भगति भगवन्त कै संजुत ज्ञान विराग"

इस सम्बन्ध में एक और तथ्य भी सामने आता है कि तुलसी-युग में नाथपंथियों के शुष्क वैराग्य का प्रचार खूब फैला हुआ था।

"यह संसार कागद की पुड़िया, बूंद परे गल जाना है।"

का राग सुन कर संसार पर से विश्वास उठने लगता था। ऐसी परिस्थिति में तुलसी ने वैराग्य को भी मर्यादित रूप देकर उसका परिष्कार किया है। यदि तुलसी के वैराग्य का अर्थ जीवन के प्रति एकान्त अनास्था होती तो वे कदापि मानव-जीवन को सुखी बनाने के लिए तथा पृथ्वी पर ही स्वर्ग की अवतारणा करने के लिए एक सुदृढ़ संकल्प लेकर सामने न आते। तुलसी ने मानव-जीवन में कर्मण्यता का शंखनाद फूंकने के लिए निम्नलिखित शब्दों में अपनी वाणी का प्रसार

किया है :

नरतन सम नहिं कवनिऊ देही,
जीव चराचर जाचत जेही ।
नरक स्वर्ग अपवर्ग नसेनी,
ज्ञान विराग भगति सुभ देनी ।

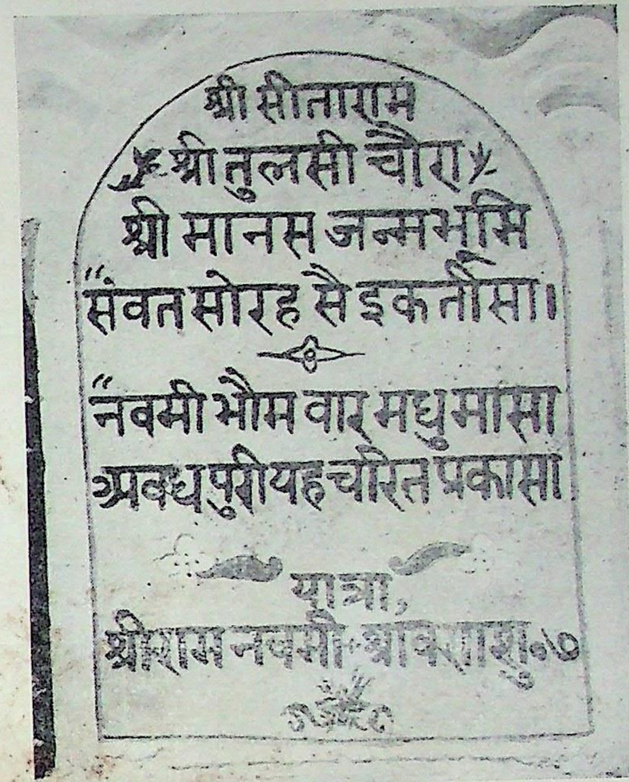
इससे बढ़कर ऐहिक अभ्युदय एवं पारलौकिक निःश्रेयस का संदेश भला और क्या हो सकता है । पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "उनकी वाणी की प्रेरणा से आज भी भारतीय जनता सौन्दर्य पर मुग्ध होती है । महत्व पर श्रद्धा रखती है । शील की ओर प्रवृत होती है । सन्मार्ग पर पैर रखती है । विपत्ति में धैर्य धारण करती है । कठिन-से-कठिन कर्म में उत्साहित होती है । व्यथा से आर्द्र होती है । बुराई पर ग्लानि करती है । शिष्टता का आलम्बन लेती है । और मानव जीवन के महत्व का अनुभव करती है ।''

उपर्युक्त कथन से तुलसी के वैराग्य का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है । तुलसी-वैराग्य संसार से विरक्त नहीं करता, बल्कि मनुष्य को बड़ी-से-बड़ी चुनौती को स्वीकार करने की तत्परता देता है ।

प्रकट कुरान

अन्त में अब्दुर्रहीम खानखाना के शब्दों में भारतीय संस्कृति के विश्वकोष रामचरित मानस को मेरी श्रद्धांजलि :

रामचरित मानस विपुल संतन जीवन प्रान ।
हिन्दुवान को वेद सम जमनहिं प्रकट कुरान ।।



अयोध्या में तुलसी चौरा पर शिलालेख

जातीय चेतना का संबल रामचरितमानस

—बालकृष्ण

किसी ग्रन्थ के महत्व के मूल्यांकन की एक अचूक कसौटी यह है कि वह जनता के जीवन का सहारा और प्रेरक कहां तक बन पाया है। इस कसौटी पर विरली ही साहित्यिक कृतियां खरी उतरेंगी। संसार भर की विभिन्न भाषाओं की साहित्यिक कृतियां सुशिक्षित नर-नारियों के मनोरंजन का साधन प्रमुखतः होती हैं। किन्तु संसार भर की भाषाओं के साहित्य के इतिहास में संभवतः ऐसी एक भी साहित्यिक कृति नहीं मिलेगी जो करोड़ों मानवों के जीवन का मानसिक संबल और प्रेरक शक्ति बन गई हो। बाइलिल धर्म पुस्तक के नाते करोड़ों ईसाइयों के जीवन का संबल है और अनेक शताब्दियों से रही है। अपढ़ लोगों को भी उसमें अपने जीवनयापन में सात्विक प्रेरणा मिलती रही है और उनके दुख दर्दों में तो उनकी वह सान्त्वनादायिनी प्रमुख सखी रही है। किन्तु बाइबिल न तो किसी एक की कृति है और न वह साहित्यिक ग्रन्थ ही। उसकी भाषा में ओज अवश्य है, किन्तु उसमें साहित्यिक कृतियों की अन्य विशेषताएं उस मात्रा में नहीं है जिस मात्रा में होने से कोई भी साहित्यिक कृति मानव जीवन धारा का अमर अंग बन जाती है। जहां तक मैं जानता हूं संसार भर की भाषाओं में यदि ऐसी कोई एक कृति है जो उच्च कोटि का काव्य होते हुए भी जनजीवन की ज्योति और उसका प्रधान संबल है और अनेक शताब्दियों से रही है तो वह गोस्वामी तुलसीदास का "रामचरित मानस'। इस सम्बन्ध में दो मत हो ही नहीं सकते कि अपने रचे जाने के तुरन्त पश्चात ही वह राजगृह से लेकर हरिद्वार तक के पूरे उत्तर भारत में, क्या ग्राम, क्या नगर, सर्वत्र जन साधारण के हृदय में बस गया। क्या शिक्षित और अशिक्षित वह सभी के जीवन का अभिन्न अंग बन गया। यह कहना अनुचित न होगा कि उनका जीवन एक प्रकार से इसलिए भरापूरा है कि उनकी चेताना के भण्डार में रामचरित मानस की अनेक मणियां संगृहीत हैं। जो लोग शिक्षित हैं और कला और साहित्य के प्रेमी हैं उनके लिए भी रामचरित मानस कलाशिल्प का एक अभूतपूर्व ग्रन्थ है। यदि संसार भर में ऐसा कोई ग्रंथ है जो सौन्दर्य प्रेमियों, कर्मयोगियों और धर्म भीरुओं के लिए एकसमान प्रेरणादायक और आनन्द स्रोत है तो वह केवल गोस्वामी जी का रामचरित मानस।

औचित्य का प्रश्न

यह दुर्भाग्य की ही बात है कि आज कुछ लोगों ने इस महान् ग्रन्थ पर ऐसे आक्षेप किए हैं जिनका कोई औचित्य नहीं और जो कुछ पूर्वाग्रहों से ही प्रेरित हैं। मुख्य आक्षेय तो यह है कि इस ग्रन्थ में स्त्रियों और श्रमिक वर्ग के प्रति घृणा की भावना को प्रतिपादित किया गया है और इसमें ब्राह्मणों को बड़ा बताया गया है और यह उपदेश दिया गया है कि हर अवस्था में ब्राह्मण का आदर करना मानव मात्र का धर्म है।

स्त्रियों के प्रति द्वैथ भावना प्रदर्शित करने के समर्थन में कुछ चौपाइयां बहुधा उद्धृत की जाती हैं। बहुधा आजकल की शिक्षिता नारियों को मानस में निम्नलिखित अर्धाली अत्यन्त खटकती हैं :

'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी ॥'

कहा यह जाता है कि इस अर्धाली से स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास स्त्री और पशु में कोई अन्तर नहीं मानते थे और इसलिए उन्होंने यह कह दिया कि दोनों ही ताड़ना के बिना सीधे रास्ते पर नहीं रहते। अतः वे गोस्वामी जी को प्रतिक्रियावादी कहकर उनका तिरस्कार करती हैं। रामचरित मानस को आज के समाजवादी और समतावादी भारत में न केवल त्याज्य समझती हैं, वरन् यह भी चाहती हैं कि उसका पठन-पाठन रोक दिया जाए। इस सम्बन्ध में तथाकथित शूद्र वर्गों के प्रतिनिधियों को भी इसी कारण रामचरित मानस के प्रति आक्रोश है। यदि उनकी मान ली जाए तो वे भी इस ग्रन्थ का अस्तित्व ही मिटा दें। किन्तु ऐसे आलोचकों को यह ध्यान संभवतः नहीं रहता कि रामचरित मानस समाजशास्त्र पर लिखित कोई पाठ्य पुस्तक या शुद्ध विवेचनात्मक ग्रंथ नहीं, वरन् वह तो एक महाकाव्य है जिनमें विभिन्न चरित्रनायक अपने अपने मन की बात अपने अपने ढंग से विभिन्न अवसरों पर कह देते हैं। यदि इस बात को ध्यान में न रख कर आलोचना की जाय तो शेक्सपियर, होमर, गेटे, टालस्टाय आदि संसार के सब श्रेष्ठ साहित्यकार भी स्त्री और कर्मकार द्रोही ठहरा दिया जाएंगे। इतना ही नहीं पुरुष लेखकों के अतिरिक्त स्त्रियों द्वारा लिखित ग्रन्थों में भी नारियों के सम्बन्ध में ऐसी उक्तियां मिलेंगी। क्या उन्हें भी स्त्री-द्रोही और पशु कोटि का मानने वाली मान लेना होगा ? यहां केवल शेक्सपियर के बारे में कुछ कह दिया जाए। शेक्सपियर ने तो अपने सिम्बेलीन नाटक में स्त्रियों के सम्बन्ध में यह कहलवाया है :

.........Let there be no honor
Where there is beauty; truth where semblance; love
Where there is another man. The vows of women
Of no more bondage be to where they are made
Than they are to their virtues which is nothing.
O, above measure false !

आगे चलकर वही पात्र अपनी प्रेयसी के प्रति क्रुद्ध होकर स्त्री जाति के प्रति यहां तक कि उसके माता के रूप को भी यह कह देता है :

"We are all bastards
And that most venerable man which I
Did call my father was I know not where
When I was stamped. Some coiner with his tools
Made me a counterfeit; yet my mother seem'd
The Diana of that time. So doth my wife
The non pareil of this..............................
......................Could I find out
The women's part in me! For there's no motion
That tends to vice in man but I affirm
It is the woman's part. Be it lying, note it
The woman's; flattering hers; deceiving hers;
Lust and Rank thoughts her's; revenges hers;
Ambitions, covetings, change of prides, disdain,
Nice longing, slanders, mutability,
All faults that man may name, nay, that hell knows
Why, hers, in part or all; but rather all;
For even to Vice
They are not constant, but are changing still
One vice but of a minute old for, one
Not half so old as that. I' "write against them
Detest them, curse them. Yet 'its greater skill
In a true hate to pray they have their will:
The very devils cannot plague them better.

Act Two. Scene V.

इसी प्रकार हैमलेट नाटक में शेक्सपीयर ने तो हैमलेट से अपनी मां के लिए ही यह कहलाया है :

"Framy, thy name is woman"

Act One. Scene II.

शेक्सपीयर के अन्य नाटकों में भी नारी जाति के प्रति इसी प्रकार के विचार बिखरे हुए हैं। अंग्रेजी शिक्षिता नारियां रामचरित मानस और गोस्वामी तुलसीदास के प्रति अपना आक्रोश प्रकट करती रहती हैं क्या उन्होंने एक बार भी शेक्सपीयर के विरुद्ध दो शब्द भी कहे ? पर क्या इन्हीं के आधार पर शेक्सपीयर के बारे में यह कहा जा सकता है कि उसने स्त्री जाति को निन्दनीय बताया है। जान रस्किन इंगलण्ड का विख्यात लेखक और आलोचक हो गया है। उसने तो अपने एक भाषण में यह तक कहा था कि शेक्सपीयर में कोई नायक नहीं केवल नायिकाएं ही हैं। उसके इस कथन का तात्पर्य यही था कि शेक्सपीयर ने स्त्री जाति को मानवी मूल्यों की दृष्टि से जो दर्जा प्रदान किया है वह पुरुषों को नहीं दिया है। शेक्सपीयर की प्रशंसा करने के वास्ते उसने यह बात नहीं कहीं है। उसने तो शेक्सपीयर की सब कृतियों का मंथन करके यह निष्कर्ष निकाला था। किन्हीं एक-दो बिखरी हुई उक्तियों के आधार पर उसने शेक्सपीयर की कृतियों का मूल्यांकन नहीं किया। शेक्सपीयर के पूरे नाटकों की मानव के मन पर जो छाप पड़ती है और अन्त में बनी रहती है उसी के आधार पर उसने यह मत स्थिर किया। किसी भी कृति का मूल्यांकन करने का सही तरीका यही है। पूरी कृति के पढ़ने पर मन में क्या संस्कार बनते हैं, वह कृति मानव के हृदय में किन भावनाओं को पैदा करती है, किन विचारों को जन्म देती है और उसकी आत्मा में क्या स्फूर्ति प्रदान करती है—इन्हीं बातों का ज्ञान लेना ही किसी कृति का सही मूल्यांकन करने का सही तरीका होता है। अतः रामचरित मानस में किन्हीं स्थलों पर मिलने वाली किन्हीं दो-चार चौपाइयों के आधार पर ही यह कहना कि मानवजाति में असमता और ऊंच-नीच की भावना का समर्थन और प्रतिपादन उसमें किया गया है उस महाग्रन्थ के मूल्यांकन करने का सही तरीका नहीं।

परहित

देखना तो यह चाहिए कि मानव हृदय पर उस ग्रन्थ की क्या अमिट छाप पड़ती है। इस दृष्टिकोण से देखने पर यह पता चलेगा कि वह ग्रन्थ तो यही छाप छोड़ता है कि मानव जीवन की चरम निष्पत्ति स्वार्थ साधन में न होकर परहित की साधना करने में ही है। राम का अवतार क्यों होता हैं इस प्रश्न का उत्तर देने के क्रम में यह कथानक उसमें दिया हुआ है। देवता लोग तारक असुर का मुकाबला किसी प्रकार न कर सके। तब वे ब्रह्मा के पास गए और उनसे प्रार्थना की—"आप तारक बध का उपाय बताएं।"

देवताओं ने ब्रह्मा का उपदेश मानकर कामदेव की स्तुति की और उसके प्रकट होने पर उनसे अपनी यह विनती की कि तुम जाकर शिव की समाधि भंग करने का प्रयास करो। पर शिव के प्रताप को कामदेव भली भांति जानता था और यह अच्छी तरह समझता था कि 'संभु विरोध न कुशल मोहि' पर यह जानते हुए भी उसने देवताओं से कहा :

तदपि करब में काजु तुम्हारा। श्रुति कह परम धरम उपकारा॥
परहित लागि तजै जो देही। संतत संत प्रसंसहिं तेही॥

उसने केवल यह कहा ही नहीं, वरन् यह जानते हुए भी कि 'शिव विरोध ध्रुव मरन हमारा' उसने अपना प्रभाव चारों ओर फैला दिया। जब शिव के मन में इस कारण विशेष क्षोभ हुआ तो उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोला जिससे काम जलकर भस्म हो गया। किन्तु स्वयं भस्म होकर भी वह देवताओं का काम तो कर ही गया, क्योंकि समाधि समाप्त हो जाने से ब्रह्मा-विष्णु के लिए यह संभव हो गया कि वे पार्वती से विवाह करने के लिए शिव को मना लें। 'परहित' का यह भाव रामायण में लगभग सर्वत्र ही मिलता है। उत्तरकाण्ड में रामायण की पूरी कथा तथा मानवों के लिए उसमें निहित उपदेश का संक्षिप्त रूप से वर्णन किया गया है। वहां गरुड़ ने काकभुशुण्ड से सात प्रश्न पूछे हैं जिनमें से एक यह था :

"संत असंत परम तुम्ह जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाउ बखानहु।"

उत्तर देते हुए काकभुशुण्ड ने कहा—

"पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया॥
संत सहहिं दुख पर हित लागी। पर दुख हेतु असंत अभागी॥

आगे चलकर गरुड़ भी यही बात कहते हैं :

संत विटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह के करनी॥

रामायण में बारंबार परहित पर इतना बल दिया जाना तो स्वाभाविक था ही। भगवान भी तो संसार में इसीलिए अवतरित हुए कि सज्जनों का परित्राण करें, उन्हें दुष्टों के अत्याचार से बचाएं। कागभुशुण्ड ने कहा भी तो है :

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप।

जब भगवान भी नर रूप धारण करके 'पर हित' साधना ही में रत रहते हैं और वही उनके अवतार का मुख्य कारण होता है तब मानवों के लिए तो इससे बड़ा धर्म हो सकता ही नहीं। जटायु ने सीता को रावण से छुड़ाने के लिए अपनी जान की बाजी लगा दी। वह सीता को तो न छुड़ा सका पर उसने परहित धर्म का निर्वाह तो कर दिया। राम ने जटायु से कहा कि भाई तुम तो जिस सद्गति के अधिकारी हो गए हो वह तो अपने कर्म के आधार पर हुए हो। भगवान राम ने कहा—

"परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहं जग दुर्लभ कछु नाहीं।।

इसी सत्य को भगवान् राम ने उत्तर काण्ड में अपने भाइयों के समक्ष पुनः प्रतिपादित किया। उन्होंने कहा :

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।
नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भवभीरा।।

भरत का चित्रण बेजोड़

भगवान् राम का तो जन्म परहित के लिए हुआ ही पर रामायण में भरत, लक्ष्मण और हनुमान जैसे 'परहित' साधक पात्र भी संसार भर के साहित्यिक इतिहास में अनोखे हैं। यह ठीक है कि इन पात्रों की रचना महाकवि तुलसीदास की पूर्णतः अपनी नहीं है। ये पात्र तो भारतीय ऐतिहासिक चेतना के अनेक युगों से अभिन्न अंग रहे हैं। किन्तु रामचरितमानस में भरत के चरित्र का जिस रूप में चित्रण किया गया है वह उसकी अपनी विशेषता है। अपनी स्वार्थ साधना के लिए अपनी वाक् चातुरी से उन्मत विरोधी भीड़ को भी अपने पक्ष में करने का चित्रण शेक्सपीयर ने जूलियस सीजर नाटक में किया है। वहां मार्क अन्टोनी अपनी वाक् चातुरी से जूलियस सीजर के विरुद्ध आई भीड़ को अन्त में सीजर का पक्षपाती बना देता है। ऐसा करना बड़ी बात है पर अद्भुत बात नहीं। वैसा करने में अन्टोनी का अपना स्वार्थ था। अपने स्वार्थ के लिए तो हर प्रकार की युक्ति सहज ही सूझती है और अपनाई जाती है। किन्तु संसार भर के साहित्य में संभवतः कहीं भी ऐसा चित्रण नहीं मिलता जिसमें यह दिखाया गया हो कि जब माता, गुरू, मंत्री और प्रजाजन सभी इस बात का आग्रह कर रहे हों कि 'भाई राजपाट अपने हाथ में लो" तब कोई अपनी सारी तर्क शक्ति से यह सिद्ध करने लगा हो कि यदि मैं सिंहासन पर बैठा तो सब बंटाधार हो जाएगा। राज्य को बलपूर्वक हथियाने की कहानियां तो मानवी इतिहास में भरी पड़ी हैं—राज्य ही क्यों. जरा-सी भूमि और सम्पत्ति को भी हथिया लेने के लिए लोगों में भारी रक्तपात होता रहा है। पर जहां तक मुझे ज्ञात है न तो इतिहास में और न साहित्यिक आख्यायिकाओं में कहीं अन्यत्र ऐसी घटना का वर्णन मिलता है कि जिसे सभी लोग राज्य देने पर तुले हुए हैं वही व्यक्ति उन सबको अपनी पूरी तर्क शक्ति से यह मनाने का प्रयास कर रहा हो कि तुम मुझे राज्य देने का आग्रह मत करो, क्योंकि यदि मैं गद्दी पर बैठ गया तब तुम लोगों का किसी प्रकार से भी हित न सध पाएगा। अपने ही विरुद्ध पूरी तर्क चातुरी लगा देने का चित्रण भरत के प्रसंग में रामचरितमानस में जिस ओजपूर्ण भाषा और जिस कौशल से किया गया है वह केवल अपना ही उदाहरण है। बड़ों की मर्यादा का पूरी तरह निर्वहन करते हुए उन्हें यह बताना है कि मुझे राजसिंहासन पर क्यों नहीं बैठना चाहिए। गोस्वामी जी ने इस स्थल पर जिस ओजपूर्ण पर संयत भाषा में भरत की बात कही है वह रामचरितमानस की बेजोड़ मणि है।

भरत कहते हैं :

मोहि उपदेस दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिव संमत सब हीका।
मातु उचित धरि आयेसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहौं कीन्हा।
गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित कहिअ भलि जानी।
उचित कि अनुचित किएं बिचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू।

सीताराम के विना सब कुछ व्यर्थ है। इसलिए भरत कहते हैं कि मैं तो यही ठीक समझता हूं :

"जाउं राम पहिं आयेसु देहू। एकहि आंक मोर हितएहू ॥"

इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं। मैं राज संभालूं इससे कुछ बनेगा नहीं।

जातीय चेतना की कमी

आज भारत में जनजीवन संकटमय और विपन्न हो गया है तो उसका कारण यह नहीं है कि भारत दरिद्र देश है और अपनी आवश्यकताएं पूरी करने में असमर्थ है। भारत के नर नारियों की आवश्यकताएं हैं ही कितनी ? सूर्य यहां इतनी ऊर्जा भेजता है कि यहां के नरनारियों को अपनी देह की रक्षा के लिये उतने परिधानों की आवश्यकता है ही नहीं जितनी अन्यत्र होती है। भारत की भूमि उर्वरा है। भारत के नरनारियों के पास सहस्त्रों वर्ष की अनुभूति है। किन्तु, यदि आज कोई कमी है तो जातीय चेतना में भंग पैदा हो जाने की है। भारत की शस्य श्यामला भूमि में प्रतिस्पर्धा और संघर्ष को वह महत्त्व न दिया गया जो परहित और अपरिग्रह को दिया गया। क्या जैन, क्या बौद्ध, क्या हिन्दू धर्म—सभी में तो इन दो बातों को अत्यन्त महत्त्व प्रदान किया गया। मानव की चेतना अनिवार्यतः हिंसात्मक नहीं है—उसमें स्नेह, सौहार्द और सहयोग की भावना निहित है और इनका समुचित विकास परहित और अपरिग्रह के रूप में ही सामूहिक जीवन में होता है। अतः भारत में दधीचि, शिवि, मकरध्वज आदि आख्यानों को ही बारबार लोगों के सामने रखा गया। यदि वह जातीय चेतना पुनः सक्रिय हो जाए तो भारत की सब बाधाएं सहज ही दूर हो जाएंगी। जो हो, यह तो है ही कि रामचरित मानस में उसी जातीय चेतना को सजीव अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। अतः इसमें आश्चर्य की बात क्या हो सकती है कि वह हिन्दी भाषी जगत में जातीय चेतना का प्रबल स्वर बना हुआ है।

रामगाथा भारत की चेतना का अभिन्न अंग रही है। यह उसके साधारण जनों के जीवन-रथ का एक प्रबल पहिया रही है। वह तो :

बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा अलि कलुष विभंजन।
सोइ बसुधा तल सुधा तरंगिनि। भय भंजनि भ्रम भेक भूअंगनि।

उस कथा के कारण ही इस ग्रन्थ का अपना अलौकिक महत्त्व होता, पर तुलसी ने तो उसे अपनी प्रतिभा से इतना सुन्दर स्वरूप दे दिया कि वह संसार में एक अनोखा ग्रन्थ और जनता के जीवन का संबल और प्रेरणास्रोत हो गया है। आज इस देश को भरत रूपी राजनेताओं की परमावश्यकता है जो राम रूप प्रजा की चरण पादुका लेकर, पर स्वयं तपस्या और साधना का जीवन बिताते हुए, निस्पृह रह कर जन सेवा में अपना तन-मन-धन लगा दें।

राम नाम अवलम्ब बिनु परमारथ की आस। बरसत बारिदि बूंद महिं चाहत चढ़न अकास ॥

विद्रोह का ग्रन्थ रामचरितमानस

—जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी

रामचरितमानस जिस समय लिखा गया, उस समय वह विद्रोह का ग्रन्थ था। वह एक सोद्देश्य रचना थी, यद्यपि लेखक ने अपनी विनम्रता के कारण इस 'रघुनाथ गाथा' को 'स्वान्तःसुखाय' ही कहा है। रामचरितमानस ने देश में कितनी लोकप्रियता प्राप्त की, इसका प्रमाण यह है कि आज न केवल भारतवर्ष बल्कि सारे संसार में तुलसीदास एक महान कवि के रूप में विख्यात हैं और रामायण भारत की कोटि-कोटि जनता के दैविक, दैहिक और भौतिक तापों को दूर करने का एक साधन माना जाने लगा है।

तुलसीदास को कभी-कभी निहित स्वार्थों, पुराणपंथियों और दकियानूसी दृष्टिकोण का समर्थक कह दिया जाता है। पर सही बात यह है कि तुलसीदास ने उस समय जो व्याप्त ढोंग और पाखण्ड थे, उनके विरुद्ध अपनी कलम चलाई, सम्प्रदायवाद की निन्दा की और मानवता का सन्देश दिया। उनका यह कवित्त प्रसिद्ध है :

धूत कहो, अवधूत कहो,
रजपूत कहो, जुलहा कहो कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न व्याह है,
काहू की जाति बिगारन सोऊ।
'तुलसी' सरनाम गुलाम है राम को
जाको रुचे सो कहै किन कोऊ।
मांग के खैबो, मसीत को सोइबो,
लइवे को एक न दइबे को दोऊ॥

इससे स्पष्ट है कि तुलसीदास को जाति, बिरादरी या सम्प्रदाय की कोई चिन्ता नहीं थी, बल्कि इस प्रकार की भावना के प्रति विरक्ति थी और वे मस्जिद में सोने को भी बुरा नहीं मानते थे।

रामचरितमानस में, चाहे आदि हो या अन्त, तुलसीदास ने सब व्यक्तियों को समान कहा है। उन्होंने कहा :

"सीयराममय सब जग जानी। करउं प्रनाम जोरि जुग पानी॥"

जो व्यक्ति सब लोगों को सियाराममय जानता हो, वह उनमें छोटे-बड़े का भेद क्यों करेगा? इसीलिए तुलसीदास के प्यारे चरित्र वे हैं जो समाज के उपेक्षित वर्ग हैं, जिन्हें राम प्यार करते हैं, उनमें हैं भरत, सीता, हनुमान, शबरी, केवट और विभीषण।

भरत के रूप में तुलसीदास ने एक विशुद्ध मानवतावादी का चरित्र-

चित्रण किया है। वे निषादराज से गले मिलते हैं, यद्यपि निषादराज ने अपने को कपटी, कायर, कुमति और कुजाति कहा है। जिसकी छाया छूने से भी स्नान करना चाहिए, लेकिन न तो भरतजी ने स्नान किया और न उनके अन्य साथियों ने। यहां तक कि वशिष्ठजी ने भी उसे आशीर्वाद दिया और माताओं ने भी। यह छुआछूत को चुनौती नहीं थी तो क्या थी? वैसे भी तुलसीदास को रामचरितमानस में जहां भी मौका मिला, उन्होंने पाखण्ड, दम्भ और मनुष्यों में पाए जाने वाले दुर्गुणों के विरोध में कलम चलाई है। जब राम ने वाल्मीकि से पूछा कि मैं कहां रहूं तब तुलसीदासजी ने वाल्मीकि के मुंह से यह बतलाया है कि भगवान का निवास कहां होता है। इस अवसर पर तुलसीदास ने ऐसे लोगों को आदर्श पुरुष माना जो न जन्म से बड़े हैं, न धन से बड़े हैं, न शक्ति से बड़े हैं, न राजपाट या विद्या-बुद्धि के कारण बड़े हैं:

जाति-पांति धन धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहिं रहइ उर लाई, तिहि के हृदय रहहु रघुराई॥

तुलसीदास ने जाति-पांति, धन-धर्म, प्रशंसा और परिवार को छोड़, यहां तक कि स्वर्ग और नरक और मोक्ष को भी एक समान मानने वाले के हृदय में ही राम का वास बताया है।

तुलसीदासजी उसी चीज को अच्छा मानते हैं जिससे किसी एक का नहीं, बल्कि सब का फायदा हो। वह कहते हैं: 'कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहं हित होई॥' यानी वही कीर्ति, वही कविता और वही सम्पत्ति उत्तम है जो गंगा की तरह सबका हित करने वाली हो। तुलसीदास किसी खास धर्म में विश्वास नहीं करते इसके अनेक प्रमाण हैं। वे हिन्दू धर्मशास्त्रों की दुहाई देकर इस बात को कहते हैं। हमारा राष्ट्रचिह्न 'सत्यमेव जयते' है। महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा को व्रत माना था। तुलसीदास भी कहते हैं:

धरम्म न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना॥

इसी तरह अहिंसा के सम्बन्ध में वे हिन्दू धर्म के अनुसार कहते हैं:

"निज प्रभुमय देखहिं जगत, केहि सन करहि विरोध।"

यह अहिंसा का सिद्धान्त है, यह समता का भी सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त है जिसके आधार पर प्रत्येक प्रकार के शोषण को चुनौती दे सकते हैं। तुलसीदास ने काकभुशुंडि के मुंह से ब्राह्मणों के जो गुण बताए हैं, वे जन्मजात ब्राह्मणों के गुण न मानकर उन लोगों की प्रशंसा माननी चाहिए जो विद्वान हैं, सदाचारी हैं, राम-भक्त हैं, क्योंकि पूरे रामचरितमानस में इस बात के अनेक उदाहरण पड़े हुए हैं जहां तुलसी ने केवल जन्म को प्रधानता नहीं दी।

उज्ज्वल नारीत्व

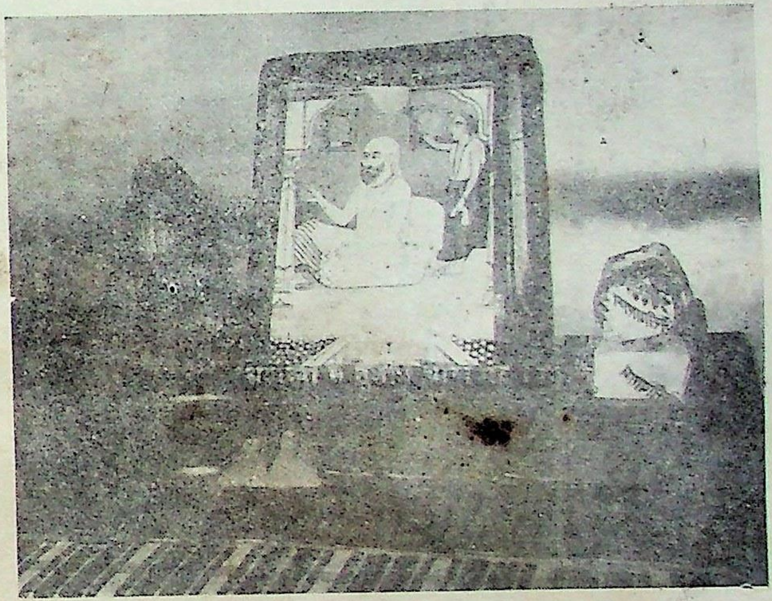
जिस प्रकार तुलसीदास से पहले देश में रामलीला नहीं होती थी और राम का या रावण का वही स्वरूप स्थिर था जो वाल्मीकि ने वर्णित किया था, उसी प्रकार रामचरितमानस की स्थापना से पहले देश के नारीत्व का इतना उज्ज्वल चरित्र नहीं प्रस्तुत किया गया था जितना तुलसीदास ने सीता के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने सीता की तपस्या को इतना ऊंचा करके दिखाया कि वे जगज्जननी और आदर्श भारतीय नारी के रूप में मानी जाने लगीं। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति आदि अनेक भारतीय महाकवियों ने नारी चरित्र का चित्रण किया है, पर नारी चरित्र को जो गरिमा तुलसीदास ने रामचरितमानव के माध्यम से दी, वह कोई और व्यक्ति न दे सका। जिस प्रकार आधुनिक भारत में सीता के चरित्र को सार्वजनिक प्रकाश देने के लिए तुलसीदास उत्तरदायी हैं, उसी तरह हनुमान के वर्तमान स्वरूप को भी हम तुलसीदास की ही देन मान सकते हैं। हनुमान की निष्ठा का और भक्ति का उन्होंने जो वर्णन किया है, उसके कारण भक्त भगवान के ऊपर हो गया है। यह भक्त किसी उच्च वर्ग का नहीं था, पर क्या रामचरितमानस में कभी एक भी ऐसा क्षण आया है जहां हनुमान के चरित्र में लवलेश भी खोट दिखाई दे। वे सदा पवित्र हैं। हमें यह समझने में देर नहीं लगती कि क्या बात है कि राम शबरी के झूठे बेर खाते हैं, निषाद उनके मित्र हैं और हनुमान और जाम्बवन्त पर वह भरोसा करते हैं। वैसे भी रामचन्द्र के मुंह से तुलसीदास ने जब कुछ कहा है तो ऐसा ही लगता है कि वे जाति-विशेष को महत्त्व नहीं देते थे।

संकीर्णता को चुनौती

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदास ने रामचरितमानस में मान-

वता के विचारों को प्रशस्त किया, संकीर्णता को चुनौती दी और जीवन के उन तत्वों को प्रधानता दी है जो ऊंचा ले जाने वाले हैं, गिराने वाले नहीं। जब हम उनकी कथावस्तु को देखते हैं, विभिन्न अवसरों पर उनके वर्णनों को देखते हैं और जब हम इस बात को ध्यान में रखते हैं कि जिस समय तुलसीदास लिख रहे थे, राजदरबारों में एक-एक छन्द के लिए एक-एक लाख रुपए का पुरस्कार मिलता था, परन्तु तुलसीदास ने इतनी प्रतिभा के होते हुए भी राजदरबार में उसे भुनाने का स्वप्न भी नहीं लिया, तो हमारा सिर उनके प्रति श्रद्धा से झुक जाता है। जब हम इस बात का ध्यान करते हैं कि वाराणसी के तत्कालीन पण्डित समाज ने, धर्माचार्यों और साधु-संन्यासियों ने उनका उत्पीड़न किया, तब हमें यह समझने में देर नहीं लगनी चाहिए कि तुलसीदास अपने समय के सब निहित स्वार्थों का विरोध कर रहे थे, चाहे वे स्वार्थ राजनीतिक हों, आर्थिक या धार्मिक हों। तुलसीदास का जीवन एक ध्येयवादी सुधारक का जीवन है जो अपने मूल्यों के लिए संसार से लड़ता रहा और यही कारण है कि जब अनेक कवियों की कविताएं काल के व्याल ने ग्रस लीं, तुलसीदास की रचनाएं कालजयी हैं। वे मनुष्य में आत्मविश्वास, दृढ़ता, कष्ट-सहन और ध्येय पर कायम रहने की शिक्षा देते हैं। इसीलिए तुलसीदास ब्राह्मण और शूद्र, स्त्री और पुरुष, अमीर और गरीब, सभी को एक समान प्रिय हैं। वे सभी के लिए साहस का सम्बल हैं और सभी के दुखों को दूर करने के लिए रामबाण प्रदान करते हैं। उनकी रचनाओं में लोक-कल्याण के ऐसे शाश्वत सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है जो शताब्दियों तक समाज के जनजीवन को अनुप्राणित करते रहेंगे।

वाराणसी में प्राप्त
तुलसीदास जी
का एक चित्र



रामचरितमानस का वैशिष्ट्य

—डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा

गोस्वामी तुलसीदास का जो स्थान भारतीय साहित्य में है वह संसार के विभिन्न देशीय साहित्यों में किसी का भी न होगा। यह कथन साधार इस अर्थ में है कि विभिन्न पक्षों से, उनकी कृतियों—विशेषतः महाकाव्य रामचरितमानस के महत्त्व का निरूपण किया गया है और किया जाना सर्वथा उपयुक्त है। वे भक्त-शिरोमणि तो थे ही, इसके अतिरिक्त मूर्धन्य महाकवि थे। प्लेटो ने स्वीकार किया है कि किसी कृति को अमरता और प्रेरणा प्रदान करने की बलिष्ठ शक्ति उसी समय मिल सकती है जब उसके निर्माता का व्यक्तित्व भी ऊंची कोटि का हो। तुलसीदास मन, बचन और कर्म से भक्त महाकवि थे। उन्हें 'राम सीय मय सब जग जानी' कहने का पूरा अधिकार था। अपने राम का ही वे भरोसा रखते थे। राम की अनन्यता के साथ-साथ अनेक देवी देवताओं की आराधना में उन्होंने किसी प्रकार की न्यूनता नहीं रहने दी, पर सभी से उन्होंने केवल याचना इतनी ही की है कि 'राम चरन रति देहु।' उनके आराध्य राम परात्पर ब्रह्म थे। आदि स्थापना से लेकर सम्पूर्ण 'मानस' में उन्होंने राम के स्वरूप को केवल कथात्मक सूत्र गठित करने की कड़ी माना है।

जब इस प्रकार का योग महाकवि को प्राप्त हो कि वर्ण्य की आराधना में उसकी सम्पूर्ण वृत्तियां तन्मयीभूत हों और वर्ण्य स्वयं मर्यादा-पुरुषोत्तम होने के अतिरिक्त शक्ति-शील-सौन्दर्य का सर्वोत्तम अधिष्ठान भी हो, तभी उत्कृष्ट काव्य रूप का सृजन सम्भव है। तुलसीदास का गरिमामय व्यक्तित्व एक ओर अपने में ही श्रेष्ठ था और रामचरित-मान के नायक भगवान राम हो गए, परिणाम यह हुआ है कि सम्पूर्ण महाकाव्य भक्ति-धर्म परक बन गया है और सम्भवतः इसी बल पर उसे समस्त भारतवर्ष के अधिकांश भूप्रदेश पर एकछत्रत्व प्राप्त हो सका है। गरीब की झोंपड़ी और सामान्य पढ़े-लिखे समाज से लेकर राजमहलों और विदद्वर्ग तक का उसे समान आदर प्राप्त है। संस्कृत भाषा के माध्यम से लिखी गई ज्ञान-राशि को तुलसीदास ने अपने ढंग से, भक्ति का पुट देकर, मानस में इस प्रकार भरा है कि पण्डित समुदाय को अपार ज्ञान की निधि प्राप्त होती है, साथ ही धर्म-भावना से अनुप्राणित भारतीय जन-जीवन को रसविशेष मिल जाता है। सामान्य जनता इस कविकृति से पूर्ण परितुष्ट हो उठती है। कोई गाकर रस मग्न होता है, कोई राम-लीला के रूप में रामकथा से आनन्दित होता है, कोई उसके भीतर गूढ़ ज्ञान का दर्शन करता है, किसी को उनमें सामाजिक आचार-विचार और प्रतिष्ठित मर्यादा का बोध होता है और कोई उसमें वर्णित जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से शिक्षा ग्रहण करता है। सब कोटि के पाठक अपनी-अपनी योग्यता, बुद्धि और श्रद्धा के अनुरूप उससे उदात्त भावना का परिचय प्राप्त करते हैं। इस प्रकार सभी को कुछ-न-कुछ दिव्य उप-लब्धि होती है। यही कारण है कि इस महाकाव्य का और भक्तप्रवर तुलसी का इतना व्यापक प्रसार इस देश में हो सका और इसीलिए

कालान्तर में यह राष्ट्र और साहित्य का मूर्धन्य गौरव-ग्रन्थ बन गया है।

नैतिक बल

तुलसी की आध्यात्मिक प्रतिभा ने अपने देश-काल की तत्कालीन अभिरुचि, आवश्यकता और जीवन की गतिविधि को सच्चे रूप में पहचाना था। उनके समय में नाना प्रकार के पन्थ, धार्मिक मान्यताएं, विविध दार्शनिक मत-मतान्तर फैले हुए थे। दूसरी ओर सारी हिन्दू जनता हीनता-बोध से संत्रस्त थी। 'साखी-सबदी-दोहरा' वाले अन्य साधना-परक पन्थ और विश्वास चारों ओर एकान्त भाव से अपनी अपनीं डफली और अपना-अपना राग अलाप रहे थे। राजनीतिक स्थिति नितान्त दुर्बल और असक्त थी। मुगल दरबार की अपनी भेद-नीति से हिन्दू जनता अपने को विरानी विरासत के मातहत समझने लगी थी। समाज का सारा गठन और ढांचा अजब खींचतान की अनुभूति से भरा था। ऐसे समय में गोस्वामीजी ने उदार चेतना और समन्वय भवना को जगाने के अभिप्राय से ही ऐसा कथात्मक इतिवृत्त सामने रखा और वह भी काव्य की सरलतम शैली में कि सब वर्ग की जनता को कुछ नैतिक और आध्यात्मिक बल प्राप्त हो सका।

महाकाव्य के लिए ऊपर कहा जा चुका है कि पूर्व जन्म के दिव्य संस्कार से प्रेरित, एक क्रान्तिदर्शी प्रतिभा-सम्पन्न कवि को यदि कोई अलौकिक इतिवृत्त मिल जाए तो फिर उसका सार्वभौम एवं सार्वकालिक स्वरूप स्थिर करने में उसे बिलम्ब ही नहीं लगता। तुलसीदास ने कथानायक की मानस-सर्जना जब कर ली तो उनके सामने प्रधान प्रश्न यह खड़ा हुआ कि अभिव्यक्ति का माध्यम क्या हो? इस पर लोककल्याण की बुद्धि से प्रभावित होकर उन्होंने यही स्थिर किया कि "कीरति भनिति भूति भल सोई। सुरसरि सम सब कहं हित होई।" विषय-निवेदन अथवा उपस्थिति की शैली और भाषा ऐसी होनी चाहिए कि सबको, सभी वर्ग और कोटि के पाठक, अध्येता और श्रोता को, रसास्वादन का अवसर मिले। तभी व्यापक रूप से समाज का व्यावहारिक परितोष सम्भव है। इसी अभिप्राय से महाकवि ने ऐसी भाषा का अवलम्ब लिया जो उस काल में और आगे चलकर भी सदैव समान रूप से पठन-पाठन में सर्वप्रिय बनी आ रही हैं। संस्कृत का पूर्ण बोध और ज्ञान तो था ही गोस्वामीजी को, साथ ही ब्रज एवं अवधी पर पूरा अधिकार था। ये दोनों भाषाएं तत्कालीन अन्य कवियों द्वारा भी गृहीत हो चुकी थीं और उनमें काव्यरचना का प्रसार भी पर्याप्त हो चुका था और हो रहा है। साधारण जनता तक राम की दिव्य कथा को पहुंचाने का लक्ष्य इस प्रकार पूर्ण हो गया।

महाकाव्य की गरिमा

कथानाक और माध्यम स्थिर कर लेने के पश्चात् अपने महाकाव्य को गरिमा प्रदान करने में तुलसीदास ने कुछ उठा नहीं रखा। स्वर्गीय पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने यथार्थ बात कह दी है कि उनके पूर्व जितनी शैलियों में काव्य-प्रणयन की प्रथा व्यवहृत मिलती हैं, उन सभी का साधिकार प्रयोग उन्होंने भी पूरी सफलता से किया है। यों तो आदि कवि से लेकर उनके समय तक अनेक यशस्वी कृतिकार रामचरित को अपनी-अपनी मौलिकता के साथ उपस्थित कर चुके थे, भिन्न-भिन्न शैलियों और सजावट के साथ, पर सबसे यथायोग्य मसाला लेकर उन्हों ने जो शैली अपनाई वही उनकी सर्वसिद्धि का कारण हो गई है। अपने महाकाव्य का जैसा विधान, संयोजन एवं संघटन उन्होंने किया है, वैसा सम्पूर्ण विश्व के व्यापक प्रसार में मिलना दुष्कर है। महाकाव्य की शास्त्रीत परिभाषा की पूर्णता का विचार उन्होंने रखा है, पर अपने ढंग से ही।

कुछ विदेशी महाकवियों की विश्व-विश्रुत कृतियों का विद्वानों ने मनन-चिन्तन बड़े गाम्भीर्य से किया हैं। अभी तक स्थिति दुःखद यह है कि तुलसीदास और उन अन्य देशीय श्रेष्ठ कवियों की तारतमिक समीक्षा का प्रयास ठीक से किसी ने किया नहीं। अन्य देशों के लेखकों तक में राचमरितमानस के अध्ययन का कार्य तो होता आया है, पर तुलनात्मक उद्भावना की दृष्टि से काम नहीं हुआ है। गोस्वामीजी ने अपने महाकाव्य का इतना उत्कृष्ट समारम्भ किया है कि उसे बेजोड़ स्वीकार करना पड़ता है। ऐसा और कहीं हुआ है यह उक्त तारतमिक पद्धति से जब तक सामने नहीं आता, तब तक इस पक्ष का निर्विवाद रूप स्थिर कर सकना कठिन है। विद्वानों ने महाकवि जान मिल्टन

(१६०८-७४) के 'पैराडाइज लास्ट' के आरम्भ की भव्यता की प्रशंसा की है। इसी तरह होमर, दान्ते आदि की ख्याति भी प्रतिष्ठित है। पर मानस के समारम्भ में जो लोकरंजकता के साथ भावप्रवण वातावरण उपस्थित किया गया है उसी से आरम्भ में ही अन्दाज मिल जाता है कि इस कृति में किसी उदात्त कल्पना का वैभव सामने आने वाला है। विषयानुसार क्रम इस प्रकार का मिलता है :

आरम्भ में देवी-देवता की वन्दना है। शिव-पार्वती, वाणी-विनायक कवीश्वर-कपीश्वर के उपरान्त 'उद्भवस्थितिसंहारकारिणी' सीता और 'यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा' भगवान राम वन्दना में आए हैं। इसके बाद आती है कवि की आत्मविश्वास से भरी वाणी या कहिए आया है गम्भीर उद्घोष। ग्रन्थ की दौड़ में अवश्य गोस्वामीजी ने परम्परा के अनुसार अपनी अकिंचनता का बारबार उल्लेख किया है और कहा है—"भाषा भनिति मोर मति भोरी। हंसिबे जोग हसें नहिं खोरी।। कवित्त विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे।। कवि न होउं नहिं चतुर कहावौं।" आदि अनेक स्थलों पर अपार विनम्रता दिखाई है, पर वही गोस्वामीजी ने बड़े बल के साथ आरम्भ में ही ऐसी अपने सर्वशास्त्रज्ञान की पारंगता की घोषणा की है—"नाना पुराणनिगमागमसम्मतं यद् रामायणे निगदितं" कहने के उपरान्त भी मन उनका भरा नहीं और 'क्वचिदन्यतोपि' जोड़ दिया है। अपने पूर्ण पांडित्य की विश्वासभरी ऐसी शब्दावली की मार्मिकता कितनी दीप्तिमयी है।

मंगलाचरण के बाद तो महाकवि ने गुरू, ब्राह्मण, सज्जन-संत-साधु आदि की अभ्यर्थना की है। साथ ही इनके स्वभाव और प्रकृति की तुलना में 'बिनु काज दाहिने-बाएं' आने वाले खलगन को स्मरण कर लेना नहीं भूले। तदनन्तर कथा-नायक राम से सम्बद्ध अयोध्या नगर और नगर निवासी, दशरथ, माताओं और बन्धुओं आदि की स्तुति के बाद अपने इष्टदेव की स्तुति की। इतना सब करने पर भी बात पूरी नहीं हुई और रामचरितमानस के सन्दर्भ में मानस-रूपक की सांगता ने तो महाकाव्य के दिव्य समारम्भ की भव्यता की पूर्ति कर दी है।

सूत्रता

समारम्भ की इस अद्भुत योजना के उपरान्त रामकथा के आकर-स्वरूप और मूल उद्गमस्थल की ओर महाकवि ने ध्यान आकर्षित किया है। कुम्भज ने शिव से, शिव ने पार्वती से, याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज से और काकभुशुण्डि ने गरुड़ से इस कथा को कहा है—इसीका काव्यात्मक विवरण उपस्थित किया गया है। उसी प्रसंग में एक सूत्र से दूसरा और दूसरे से तीसरा सूत्र निकलता चला है। रामावतार की आवश्यकता क्या पड़ी है संसार को, इसकी कथा आगे आई है, साथ में सती का आत्मदाह और पार्वती का विवाह आदि प्रसंग आए हैं, क्योंकि सम्पूर्ण रामचरित शिव-शिवा संवाद के रूप में कहा गया है। मानस का प्रतिनायक रावण शक्ति, पाण्डित्य और साधना का उत्तम मूर्त रूप है, अतः उसके जीवनमरण की बात सामने आती है, उसके उद्भव और जन्म का भेद भी कहना अनिवार्य हो गया है। जब सभी सूत्र संजो दिए गए तो सीधे विषय पर कवि आ गया है। और तब दशरथ और दाशरथी राम-जन्म की पूर्व अनुस्मृति कही गई है। उसमें उनके पूर्व-जन्म की वस्तुस्थिति समझाई गई है।

इतने बड़े और चतुर्मुखी समारम्भ की समस्त साज-सज्जा निपुणता से की है और काव्यधारा को बिना किसी प्रकार विच्छृंखलित किए कवि ने शुद्ध कथापक्ष की बात आगे उठाई है। फिर तो दशरथ के मन में पुत्र की कामना होती है, वशिष्ठ ऐसे गुरू सहायक होते हैं और शृंगी ऋषि ने पुत्र-काम्य यज्ञ पूर्ण कर दिया। मंगल-विधान की पूर्णता के अनुरूप—'जोग लगन, ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल। चर अरु अचर हरषजुत, राम जनम सुख मूल।।" और "भए प्रगट कृपाला दीन-दयाला कौसल्या हितकारी।" यहां से सीधी कथा की धारा काव्यगत हुई समझनी चाहिए। यदि इस प्रकार का उदात्त समारम्भ अन्य किसी महाकवि ने किया है तो उसका भी अभिनन्दन होना चाहिए।

यह सब तो केवल महाकाव्य के समारम्भ की बात हुई है, यदि उसके सर्वपक्षीय सौन्दर्य की विवेचना की जाए तो उसमें सर्वत्र विशिष्ट-तामूलक आकर्षण प्राप्त होता है। अलंकार, रस, छन्द-विधान और अन्य विविध काव्य-सौष्ठव की कारणभूत वृत्तियां तो आद्यन्त भरी मिलेंगी। संवाद, ज्ञान, अध्यात्म, व्यवहार-नीति आदि की सारगर्भ बातें अपने-अपने स्थान पर इस ढंग से सजी हैं कि पाठक और अध्येता काव्य के सर्वतोमुखी आलोचन का पूर्ण रसास्वादन कर सकता है। केवल आधुनिक परिप्रेक्ष्य में रामचरितमानस का विश्लेषण यदि कोई करे और कहे कि इसमें समाजवादी या मार्क्सवादी विचारधारा की झलक नहीं मिलती तो ऐसे लोगों के उपचार की आवश्यकता समझनी चाहिए।

मानस में रामराज्य की कल्पना

—सीताराम चतुर्वेदी

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में श्रीरामचन्द्र की राज्य-व्यवस्था का जो चित्रण किया है, वह केवल काल्पनिक ही नहीं है, उसे व्यावहारिक दृष्टि से सम्भव भी बनाया गया होगा। इसीलिए आज तक हमारे यहां राम को आदर्श राजा और रामराज्य को आदर्श राज्य माना जाता रहा है। किन्तु इसके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि ऐसे राज्य की व्यवस्था करने वाला महापुरुष, सत्यनिष्ठ, शक्तिशाली, निष्पक्ष, त्यागी और निर्लोभी हो। ये गुण किसी भी युग में शासन करने वाले के लिए नितान्त अपेक्षित और आवश्यक हैं।

तुलसीदास ने उत्तरकाण्ड में १९वें दोहे की अन्तिम अर्द्धाली से लेकर २४वें दोहे तक रामराज्य की विशेषताओं का निरूपण करते हुए प्रारम्भ में ही बताया है कि राम के राज्य में कोई किसी से बैर नहीं करता था। बैर तभी होता है जब परस्पर असन्तोष हो या एक दूसरे पर अन्याय या अत्याचार करता हो। यदि राम के राज्य में कोई किसी से बैर नहीं करता था तो इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि उनके राज्य में प्रत्येक व्यक्ति सन्तुष्ट और न्यायप्रिय होने के साथ-साथ दूसरों की भावना का आदर, दूसरे के अधिकार की रक्षा और दूसरों को सहयोग देने की कामना करता था :

बयरु न कर काहू सन कोई। राम-प्रताप बिषमता खोई॥

राम के उस राज्य में सब लोग अपने-अपने वर्ग और आश्रम के धर्म के अनुसार कार्य करते चलते थे, इसीलिए उनमें आपस में किसी प्रकार की स्पर्धा या प्रतिद्वन्द्विता नहीं थी। सब लोग न्यायप्रिय, ईश्वर-भक्त और परहितकारी थे।

बरनाश्रम निज निज धरम, निरत वेद पथ लोग।

× × ×

सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधरम निरत श्रुति नीती॥

राम के राज्य में सबको ऐसी अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी कि कोई मूर्ख नहीं रह जाता था। उस समय के गुरु अत्यंत चरित्रवान, ज्ञानशील, धर्मात्मा, विद्या-बुद्धि-विचक्षण और कृपालु होते थे कि वे उदारता के साथ अपने शिष्यों को अपनी सब विद्या दे डालते थे। इसीलिए उनके सब शिष्य अत्यन्त गुणी, पंडित, ज्ञानी और गुणज्ञ होते थे। अच्छी शिक्षा के कारण उनमें कोई भी बुरे लक्षण आने ही नहीं पाते थे। उन गुरुकुलों का वातावरण इतना स्वच्छ, पवित्र, तपोमय

ग्रौर तेजोमय होता था कि सब छात्र अपने गुरुओं का आदर ग्रौर सभी विद्वानों की सेवा करते थे। इसी शिक्षा के कारण उनमें ऐसी नैतिक निष्ठा उत्पन्न हो जाती थी कि सब पुरुष एक पत्नीव्रत-धारी होते थे ग्रौर सब स्त्रियां पतिव्रता होती थीं। इसीलिए समाज में सच्चरित्रता ग्रौर पूर्ण रूप से नैतिकता व्याप्त थी।

इसी नैतिकता की उदात्त भावना के कारण ही सब एक-दूसरे की सेवा ग्रौर सहायता के लिए सन्नद्ध रहते थे। न तो कोई किसी को सताता था, न सताने देता था। इसीलिए समाज में कहीं शोक का नाम नहीं था।

राम का शासन इतना निष्पक्ष, निश्छल, स्वच्छ ग्रौर दृढ़ था कि कहीं किसी प्रकार का कोई अपराध कोई कर ही नहीं पाता था। इसलिए किसी को दण्ड देने का प्रश्न ही नहीं उठता था। चारों ग्रोर के सभी शासक, राम की शक्ति से इतने प्रभावित थे कि कोई अयोध्या के राज्य की ग्रोर ग्रांख उठाकर देख नहीं सकता था। इसलिए वहां किसी को भी मन को जीतने का प्रयत्न छोड़कर अन्य किसी को जीतने की आवश्यकता नहीं रह गई थी :

दण्ड जतिन्ह कर भेद जहं नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहिं सुनिअ ग्रस रामचन्द्र के राज॥

महाकवि भवभूति ने भी राम के इस प्रजानुरंजन की भावना का निरूपण करते हुए राम से ही कहलाया है—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति में व्यथा।

यदि प्रजा को प्रसन्न ग्रौर सुखी रखने के लिए मुझे स्नेह, दया, सुख ग्रौर यहां तक कि जानकी को भी छोड़ना पड़े तो उन्हें छोड़ देने में मुझे कोई कष्ट नहीं होगा। प्रजा के प्रति इतनी प्रगाढ़ निष्ठा के कारण ही तो राम को आदर्श राजा माना गया था।

राम ने अपने राज्य में भी इतनी अच्छी आर्थिक व्यवस्था कर दी थी कि कोई भी व्यक्ति न तो दरिद्र रह गया था ग्रौर न दीन (निस्सहाय)। गुणी होने तथा अर्थकरी विद्या में पारंगत होने के कारण सब लोग किसी-न-किसी गुण, कला या व्यवसाय में इतने सुदक्ष, स्वावलम्बी ग्रौर सम्पन्न हो गए थे कि दरिद्रता उनके पास तक नहीं फटकने पाती थी। राज्य कोष की समृद्धि तथा अन्य देशों से व्यवसाय बढ़ाने की दृष्टि से पर्वतों की खानों से स्वर्ण, रजत, रत्न आदि भी निकाले जाते थे ग्रौर समुद्र भी अपनी लहरों से जो सीपियां बाहर उछाल फेंकता था उनसे मोती निकाले जाते थे ?

'नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।'
'प्रगटीं गिरिन्ह विविध मनि खाना।'

राम के राज्य में प्रजा को स्वस्थ, सशक्त ग्रौर वीर्यशाली बनाने के लिए बहुत अधिक दूध देने वाली गौओं का विधिवत् पालन ग्रौर संरक्षण किया जाता था। गोवंश की उन्नति के लिए ऐसा प्रयास किया जाता था कि उस समय सभी गौएं कुंडीघ्नी (कूंडा भर दूध देने वाली) थीं।

केवल मनुष्यों की ही नहीं, वनस्पति जगत् ग्रौर कृषि की व्यवस्था भी ऐसी सुन्दर ग्रौर सटीक थी कि सभी प्रकार के वृक्ष नियमतः फलते-फूलते रहते थे ग्रौर खेतों में सदा अच्छी खेती-बाड़ी लहलहाती रहती थी। लताओं ग्रौर वृक्षों में इस कौशल से मधु-मक्खियां पाली जाती थीं कि उनके छत्तों से निरन्तर स्वच्छ, सुन्दर, स्वादिष्ट मधु रिसता रहता था। राज्यभर के सरोवरों में रंग-बिरंगे कमल लगा दिए गए थे जिनसे सरोवर की शोभा तो बढ़ ही जाती थी, साथ ही प्रजा के मस्तिष्क ग्रौर हृदय को शक्ति देने वाले कमलगट्ठे (बीज), कमलककड़ी (कमल की जड़) ग्रौर उष्णता निवारण के लिए कमल के पत्ते भी मिल जाते थे, जिन पर भोजन परोसकर खाने से भी शक्ति मिलती है। राम के राज्य में सब जीवों को ऐसा साध लिया गया था कि हाथी ग्रौर सिंह भी न तो आपस में लड़ते थे, न परस्पर आक्रमण करते थे, वरन् आपस का वैर भुलाकर बड़े प्रेम से साथ-साथ घूमते-फिरते थे।

राम के राज्य में सबसे प्रमुख बात यह थी कि सब लोग स्वयं अपने हाथ से अपना काम करते थे, यहां तक कि अनेक सेवकों के होते हुए भी सीताजी स्वयं घर का सारा कामकाज करती थीं :

निजकर गृह परिचर्जा करहीं। रामचन्द्र आयसु अनुसरहीं॥

यही कारण था कि आज इस युग में भी लोग स्वराज्य ग्रौर सुराज्य से भी बढ़कर रामराज्य की आकांक्षा करते हैं, क्योंकि रामराज्य तो सुराज्य की चरम सीमा थी। उनकी शिक्षा-नीति, धर्म-नीति, समाज नीति, अर्थ-नीति ग्रौर राज्यनीति अपनी पराकाष्ठा तक पहुंच चुकी थी। इसीलिए गांधीजी ने भी रामराज्य की स्थापना करने की कामना की थी जिसके लिए प्रयास करते रहना हम सबका परम धर्म है।

रामचरितमानस का काव्य-सौन्दर्य

—डा० वचनदेव कुमार

महाकवियों की कलात्मकता और उनके अति विकसित सौन्दर्य-बोध को प्रमाणित करने के लिए उत्प्रेक्षा का महत्व उपमादि सादृश्यमूलक अलंकारों में सर्वोपरि है। उत्प्रेक्षा में कवि के मानसचक्षु पृथ्वी से आकाश तक जिस तरह दौड़ लगाते हैं, शायद ही अन्य अलंकारों में ऐसा करना पड़े। इसीलिए सम्भवत: स्थल-स्थल पर गोस्वामीजी ने उपमा की लघुता तथा घिसी-पिटी होने के कारण उसकी आकर्षणहीनता की चर्चा की है। रामचरित तो आगम-निगम-पुराण, रामायण तथा अन्य अनेक रूपों में तुलसी-पूर्व वर्णित हो चुका है। इतना ही नहीं, अनेक विषयों पर अनेक काव्य लिखे गए हैं। अपनी अभिव्यक्ति में अभिनवता एवं सहज रमणीयता लाने में उपमा बहुत दूर तक उसकी सहायता न कर सकी। यही कारण है कि उन्होंने मानस में एक-से-एक सुन्दर उत्प्रेक्षाओं का समायोजन किया है।

उत्प्रेक्षा तुलसीदासस्य

रामचरितमानस में उत्प्रेक्षा के ऐसे शताधिक स्थल हैं कि उनके उत्प्रेक्षा-उपन्यसन पर मुग्ध हो जाना पड़ता है। परम रूपवती सीता के सौन्दर्य का सही चित्र खींचने के लिए कवि तीन लोकों का पर्यटन करता है, किन्तु उसे एक भी उपमा अनछ्पृष्य अनाघात नहीं मिलती। विधाता ने एक-से-एक सुन्दर रचना की है, किन्तु उसे लगता है कि सृष्टि में कोई-न-कोई ऐसा मिलता रहा, जो यह कहता हो कि कहीं और कोई सुन्दर नारी-मूर्ति बन पाती। विधाता ऐसे दोषद्रष्टा व्यक्ति की चुनौती से जैसे ऊब गया हो और उसने सीता के रूप में अपनी सारी कला खर्च कर दी हो। वह अपना सारा अनुभव निचोड़ कर सीता की अनन्वित मूर्ति गढ़कर लोगों के सामने सीना तानकर कहता है—यदि सुन्दरता की पराकाष्ठा देखना चाहते हो, मेरी कला का चमत्कार देखना चाहते हो, तो सीता को देखो :

'जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहं प्रगट देखाई।।'

ब्रह्मा के लिए अनेक पर्यायवाची शब्द हैं। किन्तु, 'बिरंचि' में जिस प्रसंगोपान्त अर्थगौरव की आवश्यकता थी, वह अन्य किसी शब्द में नहीं। बिरंचि ने 'रचकर' नहीं बिरचकर विश्व के समक्ष सीता-सौन्दर्य को प्रच्छन्न रूप से नहीं, वरन् प्रकट कर दिया है।

इतना ही नहीं, सीता की सुन्दरता सुन्दरता को भी सुन्दर करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों छविगृह में दीपशिखा जल रही है। छविगृह-चित्रशाला में दीपशिखा के द्वारा सीता के सौन्दर्य का ऐसा मूर्त्त स्वरूप उन्होंने अंकित किया है कि विमुग्ध रह जाना पड़ता है। ऐसे वर्णनों में कालिदास भी पराजित होते दीखते हैं। कालिदास की संचारिणी दीपशिखा की तरह प्रतीत होने वाली इन्दुमती उपमा-पाश में बंधकर वैसी नहीं लगती जैसी सीता की उत्प्रेषित रमणीय मूर्ति। यह स्थल उपमा के ऊपर उत्प्रेक्षा का विजय-घोष ही नहीं करता, वरन् कालिदास की कला के ऊपर तुलसीदास की कला का विजयघोष भी करता

है। यदि दोनों कवियों में साम्य प्रदर्शन करना ही हो, तो 'उपमा कालिदासस्य' के साथ-साथ 'उत्प्रेक्ष तुलसीदासस्य' कहना उक्तियुक्त होगा।

बालकाण्ड से एक स्थल और उपस्थित करना ही पर्याप्त होगा। सीता की सात्विक निर्लिप्त दृष्टि का वर्णन कवि करता है:

जहं बिलोक मृग सावक नैनी। जनु तहं बरिस कमल सित श्रेनी।।

मृग-शिशु की तरह नेत्रवाली सीता जहां देखती है वहीं मानों श्वेत कमलों की वृष्टि हो जाती है। सीता के देखने में प्रकाश की रेखाएं खिंचती हैं और रेखाएं ज्योति परमाणुओं से निर्मित होती हैं—ऐसा वैज्ञानिक सत्य भी है। किन्तु इस वैज्ञानिक सत्य का अपूर्व काव्यापन इस उत्प्रेक्षा—पद्धति से हुआ है। सीता के नेत्रों से विच्छुरित वे सहस्त्र-सहस्त्र ज्योति परमाणु क्या हैं, श्वेत कमलों की पंक्तियां हैं। दृष्टि-निक्षेप का ऐसा स्पष्ट मूर्तिमंत वर्णन स्यात् ही हिन्दी काव्य में कहीं उपलब्ध हो। इतना ही नहीं, निर्लेप सात्विक दृष्टि के लिए श्वेत कमलों को उन्होंने चुना है। रक्त कमल, नीलकमल या पीतकमल को नहीं। कमल में कलुषहीनता एवं निर्लिप्तता की हमारी परम्परित धारणा एवं सात्विक प्रेम के वर्ण-परिज्ञान के द्वारा जो उत्प्रेक्षा लाई गई है, वह कथ्य को पूर्णतः उपस्कृत करती है। एक छोटी-सी उत्प्रेक्षा के द्वारा गोस्वामीजी ने सीता के उज्ज्वल चरित्र एवं भारतीय मर्यादा को अक्षुण्ण रूप में उपस्थित किया है। ऐसी ही उत्प्रेक्षाएं तुलसी की कवित्व-शक्ति के मेरुदण्ड हैं। उत्प्रेक्षा उनके सर्वाधिक प्रिय अलंकारों में ही नहीं, वरन् सर्वाधिक सफलतापूर्वक प्रयुक्त अलंकारों में है। आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय का कहना है—"तुलसी ने उपमा को उतना महत्व नहीं दिया, जितना उत्प्रेक्षा को।"

मालाएं

मानस में ऐसे अनेक स्थल हैं जहां एक के बाद दूसरी उत्प्रेक्षा लहराती जलप्रवाह की भांति उमड़ती है, जिसे हम उत्प्रेक्षामाला की संज्ञा दे सकते हैं। अरण्यकाण्ड में मदन महीप के जिस सांग रूपक को उन्होंने खड़ा किया था, वह बीच में ही थरहरा जाता यदि उसमें उत्प्रेक्षाओं के मणिस्तम्भ न रहते। मदन महीप सेना का वर्णन देखिए:

बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी।।
कदलि ताल बर ध्वजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका।।
बिबिध भांति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना।।
कहुं-कहुं सुन्दर बिटप सुहाए। जनु भट बिलग बिलग होइ छाए।।
कूजत पिक मानहु गज माते। ढेंक महोख ऊंट बिसराते।।
मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी।।
तीतिर लावक पदचर जूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा।।
रथ गिरिसिला दुंदुभी झरना। चातक बंदी गुन गन बरना।।
मधुकर मुखर भेरि सहनाई। त्रिविध बयारि बसीठी आई।।
चतुरंगिनी सेन संग लीन्हें। बिचरत सबहि चुनौती दीन्हें।।

गोस्वामी तुलसीदास दाक्षिणात्यों की तरह उत्प्रेक्षाप्रिय नहीं हैं, फिर भी मानस में अनेक उत्प्रेक्षा-मालाएं पिरोई हुई हैं। उत्प्रेक्षा-शृंखला बाण के हर्षचरित या कादम्बरी की तरह नहीं कि बहुत देर तक दम साधकर उसे देखते चलना पड़े और न हर्ष के नैषधचरितम् की तरह कि जिससे बौद्धिक सन्तोष भी उपलब्ध न होता हो। गोस्वामीजी ने अपनी उत्प्रेक्षा सृष्टि में पौराणिक उपाख्यानों का बड़ा ही सुन्दर उपयोग किया है। ऐसे स्थलों को पाकर भारतीय साहित्य से परिचित पाठक एक विशेष प्रकार की सन्तुष्टि एवं आनन्द प्राप्त करता है।

जैसा मैंने उपमा पर लिखते हुए अपना विचार प्रकट किया है कि उपमा से उनके मनोवांछित कार्य की पूर्ति न हो सकी। 'लघु', 'जूठी' उपमाओं का प्रयोग वे सामान्य स्थलों पर भले ही करते हैं, विशिष्ट अवसरों पर नहीं। वास्तविक स्थिति यह है कि आख्यान के लिए जहां वे एक उपमा से असन्तुष्ट होकर दूसरी उपमा देने की बात कहते हैं, तो वहां उपमा नहीं उत्प्रेक्षा लेनी पड़ती है। यथा:

उपमा बहुरि कहौं जिय जोही।
जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही।।
बहुरि कहउं छबि जसि मन बसई।
जनु मधु मदन मध्य रति लसई।।

इतना ही नहीं, जहां वे गीतावली में अभूत उपमा देने की बात कहते हैं, वहां वह अभूत उपमा और कुछ नहीं, वरन् उत्प्रेक्षा ही है।

उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पटपीत ओढाए।
नील जलज पर उडगन निरखत तजि सुभाव मनो तड़ित छपाए।।

इस तरह ऐसा निःसंकोच कहा जा सकता है कि जिस तरह कालिदास उपमा, भारवि अर्थान्तरन्यास और सुबन्धु श्लेष के लिए अनन्वित हैं, उसी तरह उत्प्रेक्षा के लिए गोस्वामी तुलसीदास अप्रतिम हैं।

रामचरितमानस की भाषा

—डा० रवीन्द्र भ्रमर

रामचरितमानस का रचना-सौन्दर्य, उसका साहित्यिक वैशिष्ट्य बहुत कुछ उसकी भाषा में सन्निहित है। हिन्दी जगत में इस ग्रन्थ को जो लोकप्रियता प्राप्त हुई उसके मूल में इसकी भाषा-शैली का कुछ-न-कुछ योगदान है। मानस वस्तुतः भाषा का एक ऐसा सहस्रदल कमल है जिसकी प्रत्येक पंखुरी सहज भाव से सुनियोजित जान पड़ती है। जिसके प्रत्येक कोष से काव्य-रस उद्वेलित होता है, भाव-केसर झरती है। जो गुणग्राही रसिक जन हैं, वे मानस के इस सहस्रदल कमल पर मधुकर की भांति निरन्तर अमृत-पान करते रहते हैं।

तुलसीदास के मन में एक बड़ा भारी संशय इस बात को लेकर था कि वे राम-काव्य की रचना 'भाषा' में कर रहे हैं। देववाणी संस्कृत के स्थान पर, अटपटी ग्रामीण भाषा का प्रयोग करने के कारण उनका चित्त द्विधाग्रस्त होकर रह गया था—'राम सुकीरति, भनित भदेसा'। गंवई गांव की भाषा में काव्य-रचना के प्रश्न को लेकर उन्हें ऐसा अनुभव होता मांनो वे टाट के टुकड़े पर रेशम की कढ़ाई कर रहे हैं। इतिहास साक्षी है कि तुलसीदास का संशय निर्मूल सिद्ध हुआ। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के लोक-हितकारी स्वरूप की अभिनव प्रतिष्ठा के लिए पंडितों की संस्कृत भाषा के स्थान पर लोक भाषा का प्रयोग करके तुलसीदास ने अपनी क्रान्तिकारी दृष्टि का परिचय दिया।

काव्यों के लिए पूर्ववर्ती कवियों, मुख्यतः सूफी कवियों द्वारा प्रयुक्त लोकभाषा और 'मानस' की भाषा में तात्विक अन्तर है। सूफी कवियों के प्रेमाख्यान अवधी की खालिस बेमेल मिठास के लिए पठनीय हैं। जबकि रामचरितमानस की भाषा समन्वय की भाषा है। इसमें एक ओर तो ग्रामीण बोलचाल की भाषा का निजी सौन्दर्य सुरक्षित है, लोकजीवन की सहज उक्तियों के माध्यम से मर्मस्पर्शी भाव-व्यंजना की गई है। दूसरी ओर, संस्कृत भाषा और परिनिष्ठित पदावली का प्रयोग भी धड़ल्ले से किया गया है। लोकभाषा के प्रयोग की दृष्टि से केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा। रामराज्याभिषेक का समाचार पाकर कुटिल मंथरा कैकेयी के पास जाती है और राजा दशरथ की यह छोटी रानी उसकी दशा देखकर भयभीत हो उठती है—

उतरू देइ न, सेइ उसांसू। नारि चरित करि ढारइ आंसू।

मानस में प्रयुक्त यह लौकिक भाषा अल्पशिक्षित ग्रामीणजनों को भाव-विभोर कर देती है। जहां-कहीं तत्सम शब्दों से युक्त संस्कृतनिष्ठ पदावली का प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ है, वहीं भाषा के तेवर बदले हुए जान पड़ते हैं, अभिव्यंजना भिन्न हो उठी है, किन्तु तुलसी की व्यास-शैली के कारण सामान्य जन को अर्थ ग्रहण करने में विशेष कठिनाई नहीं होती।

मानस के प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में कुछ प्रार्थनापरक छन्दों की रचना तुलसीदास ने संस्कृत भाषा में की है—

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा॥

मानस में उपलब्ध इस प्रकार के छन्दों से संस्कृत काव्य-रचना पर तुलसीदास का असाधारण अधिकार सिद्ध होता है। मंगलाचरण के रूप में लिखे गए ये छन्द भावुक भक्तों की वाणी बन गए हैं और नित्यप्रति इनका पारायण होता रहता है।

तत्सम, तद्भव और ग्रामीण अथवा देशज शब्दों के अतिरिक्त मानस में अरबी-फारसी शब्दों के भी कुछ प्रयोग मिलते हैं। मुगलकाल के सामाजिक वातावरण में जो विदेशी शब्द अथवा मुहावरे हवा में तैर रहे थे उन्हें सहज भाव से अंगीकार कर लेने में तुलसी ने संकोच नहीं किया। इस बात का ध्यान उन्होंने अवश्य रखा कि इस प्रकार के शब्द-प्रयोग मानस के भाषा-प्रवाह में विघ्न न बनने पायें। उन्होंने अरबी-फारसी शब्दों का अवधीकरण किया। उनका प्रयोग करने से पूर्व उन्हें एक प्रकार के तद्भव सांचे में ढाला :

गई बहोर गरीब निवाजू। सरल सकल साहिब रघुराजू॥

यहां 'गरीब नवाज' और 'साहिब' जैसे अरबी-फारसी शब्द लोक-भाषा की प्रकृति में घुलमिल गए हैं। 'भई बकसीस जाचवन्ह दीन्हा,' अथवा 'जस बिनु पंख बिहग बेहालू' जैसे प्रयोगों में 'बख्शीश' और 'बेहाल' की यही गति है।

मानसकार तुलसी को भाषा की शक्ति का पूरा ज्ञान था। 'कबिहि अरथ आखर बलु सांचा' उनकी यह उक्ति इस बात की प्रमाण है कि वे शब्द और अर्थ के परस्पर अविच्छेद्य सम्बन्ध को भलीभांति जानते थे और भाषा के सार्थक प्रयोग को कवि की यथार्थ क्षमता का पर्याय समझते थे। यही कारण है कि उन्होंने भाषा की भैरवी को वशीभूत कर लिया था। उन्हें भाषा की सिद्धि प्राप्त हो गई थी। मानस की भाषा सिद्ध भाषा है। यह तुलसीदास के इशारे पर नाचती चलती है : विषय, भाव, पात्र इत्यादि के अनुसार जब जैसी परिस्थिति होती है, उसी में ढल जाती है।

व्याकरण-सम्मत निर्दोष वाक्य-रचना की दृष्टि से 'मानस' भाषा का आदर्श रूप प्रस्तुत करता है। भाषा की शुद्धता और सुगठित वाक्य रचना पर जितना ध्यान तुलसी ने दिया, भक्तिकाल के अन्य कवि नहीं दे पाए। मानस की निर्दोष भाषा ने उसके कवित्व में चार-चांद लगा दिए हैं।

सहज भाषा और सहज उक्तियों के द्वारा मार्मिक भाव-व्यंजना की दृष्टि से मानस बेजोड़ है। एक उदाहरण 'नारद-मोह' के प्रसंग में :

करौं जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी॥
जप तप कछु न होइ तेहि काला। हे बिधि मिलै कवन बिधि बाला॥

नारद के कामोद्दीप्त मन का सम्पूर्ण द्वन्द्व एक छोटी-सी अर्द्धाली 'हे बिधि मिलै कवन बिधि बाला' में व्यक्त हो उठता है।

ध्वनि संगीत और माधुर्य गुण का एक यह नमूना लीजिये :

कंकन किंकिनि नूपुर-धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥
मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसाविस्व विजय कहं कीन्हीं॥

संगीत और माधुर्य के सन्दर्भ में इन पंक्तियों की अनुप्रास योजना भी विचारिणी है। इसके विपरीत, राम-रावण युद्ध के प्रसंग में वर्णित इस छन्द की भाषा भिन्न है—यह वीरत्व-व्यंजक ओज की भाषा है :

भए क्रुद्ध जुद्धविरुद्ध रघुपति त्रान सायक कसमसे
कोदंड धुनि, अतिचंड सुनि, मनुजाद भय मारुत त्रसे
मंदोदरी उर कंप, कंपति कमठ भू भूधर धंसे
चिक्करहिं दिग्गज, दसन गहि महि, देखि कौतुक सुर हंसे॥

अलंकारों की भांति मुहावरे और लोकोक्तियां भी मानस की भाषा को वैशिष्ट्य प्रदान करती हैं। 'सत्य कहउ लिखि कागद कोरे' अथवा 'चहत बारि पर भीति उठावा' जैसी अर्द्धालियों में मुहावरों की शक्ति है। इसी प्रकार, मानस के विशाल सिन्धु में लोकोक्तियों के मोती भी भरे पड़े हैं। मानस की बहुत-सी उक्तियां तो स्वतः लोकोक्ति बन गई हैं :

कीरति, भनिति, भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कर हित कोई॥

तुलसीदास ने अपने काव्यादर्श की भांति अपनी वाणी के आदर्श को भी ऊंचा रखा है। मानस की भाषा अमर भाषा है। कोटि-कोटि भावुक जनों को भाव-विभोर कर देने की शक्ति उसमें विद्यमान है।

नर और नारायण सेवा

—डा० बलदेवप्रसाद मिश्र

प्रातः स्मरणीय गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने भक्ति से केवल आस्तिक्य का ही अर्थ नहीं लिया है जबकि परम्परागत रूप में भक्ति का यही अर्थ माना गया है। भक्ति-सूत्र के अनुसार भक्ति की परिभाषा है "भक्तिः परानुरक्तिरीश्वरे" अर्थात् ईश्वर में परा अनुरक्ति का नाम ही भक्ति है। ईश्वर-भावना तो भक्ति तत्व का प्राण है।

गोस्वामी तुलसीदास ने नवधा भक्ति की परम्परा को अमान्य नहीं किया। उन्होंने अपने आराध्य राम के द्वारा लक्ष्मणजी को भक्ति के जो तत्व समझाये हैं उनमें "श्रवणादिक नवभक्ति दृढाही" कहकर श्रवण, मनन, कीर्तन, पाद-सेवन, अर्चन-वन्दन, दास्य, सख्य, आत्म-निवेदन वाली इसी नवधा भक्ति का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है। किन्तु यह न भूलना चाहिए कि गोस्वामीजी जन-कवि होने के नाते प्रत्येक स्थल पर जन-भावना का ध्यान रखते रहे हैं। इस ध्यान के अनुसार राम कथा में एवं भक्ति-परम्परा में उन्हें जहां परिमार्जन की आवश्यकता जान पड़ी, वहां उन्होंने बड़ी खूबी के साथ वैसा परिवर्तन कर दिया है।

नर सेवा

भक्ति का एक विवेचन उन्होंने लक्ष्मणजी के सामने कराया। स्वभावतः राम और लक्ष्मण का वह वार्तालाप उच्च स्तर का था। दूसरा विवेचन उन्होंने शबरी के समक्ष कराया—वह शबरी जिसे ठेठ जनता की प्रति-मूर्ति कह सकते हैं। जन-प्रतिनिधि को भगवान का तत्व-ज्ञान एक शिष्ट व्यक्ति के समान हो जाना बड़ा कठिन है। उसे यदि नारायण सेवा के भाव देने हैं तो नर-सेवा के मार्ग से ही आगे बढ़ाना कल्याण-प्रद होगा। इसीलिए शबरी के इस भक्ति-प्रकरण में गोस्वामीजी ने नर-सेवा और नारायण-सेवा को समान दर्जा दे दिया है। उन्होंने अपने राम के मुख से कहला दिया है कि :

नव महं एकहु जिनके होई, नारि पुरुष सचराचर कोई।
सो अतिसय प्रिय भामिनि मोरे, सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।

भावार्थ यह कि अगर कोई ईश्वर का उपासक नहीं है तो भी यदि वह मनुष्य समाज अथवा उसके किसी अंश विशेष का कल्याण चाहने वाला या उसके प्रति सेवाभावी है तो वह भी ऊंची भक्ति का पात्र माना जा सकता है। वह प्रभु का उतना ही प्रेमपात्र हो सकता है जितना प्रेमपात्र कोई भी भगवत् परायण साधु पुरुष हो सकता है। नर सेवक को, चाहे वह प्रत्यक्ष रूप से आस्तिक हो चाहे नास्तिक हो, नारायण सेवक से किसी प्रकार कम न समझना चाहिए। मानो इसी तत्व को स्पष्ट करने के लिए गोस्वामीजी ने अपनी इस नवधा भक्ति के साढ़े चार अंग तो नर सेवा के लिए सुरक्षित कर दिये और शेष साढ़े चार नारायण सेवा के लिए रख दिये हैं। भक्ति के शास्त्रीय विवेचन में उनका यह योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण और बड़ा विवेकपूर्ण है!

गोस्वामीजी के रामचरितमानस ने—

"निरत निरन्तर सज्जन धरमा" कहकर धर्मार्थ को शील की पताका वाला बताया है और सज्जन धर्म को निरन्तर पालनीय कहा है। यह गोस्वामीजी की अपनी विशेषता है।

सफल जन नेता

कुछ लोग कहते हैं कि शबरी के प्रति कही गई यह भक्ति गोस्वामीजी ने अध्यात्म रामायण से ली है। छाया भले ही वहां की हो, परन्तु दोनों प्रकरणों की तुलना बारीकी से की जाए तो गोस्वामी जी की शबरी के प्रति कही गई भक्ति की मौलिकता स्पष्ट हुए बिना न रहेगी। जहां अध्यात्म रामायण में प्रत्येक भक्ति-पद्धति के साथ "मैं और मेरी" का पूरा जोर है, वहां मानस की भक्ति-पद्धति इस "मैं और मेरी" की घोषणा से सर्वथा मुक्त हैं। यों तो व्यापक अर्थ में संसार के प्रत्येक नैतिक आचार-व्यवहार ईश्वर के "मैं और मेरी" के दायरे में ही आ जाते हैं। लौकिक व्यवहार में तो नैतिकता के तत्व अलग हैं। इस दृष्टि से जो सामान्य मनुष्य को अपने कुटुम्ब और अपने समाज के प्रति श्रद्धा भाव रखते हुए लोकोन्नयन की कला सिखा सके उसे ही आजकल के वैज्ञानिक युग के अनुसार सफल जन-नेता कह सकते हैं। गोस्वामी तुलसीदास इस दृष्टि से भी परम सफल और परम सामयिक जन नेता कहे जा सकते हैं।

भगति हीन नर सोहई कैसा।
बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥
कोमल चित अति दीनदयाला।
कारण बिनु रघुनाथ कृपाला॥

रामचरितमानस का निर्गुण-सगुण चिन्तन

—श्यामलाल हकीम

विश्ववन्द्य श्रीरामचरितमानस में निर्गुण एवं सगुण चिन्तन का विशद विवेचन किया गया है। यहाँ तक कि परतत्व वस्तु के निर्धारण करने में अनेक प्रकार के संशय, नास्तिकवाद तथा मायावश जीव का जीवन-मरण—इन सब का मूल कारण मानस में निर्गुण और सगुण के विवेक का न होना ही बतलाया है :

जिनके अगुन न सगुन विवेका। जल्पहिं कल्पित बचन अनेका॥
हरिमायावस जगत भ्रमाहीं। तिन्हहि कहत कछु अघटित नाहीं॥

सच्चिदानन्दमय परात्पर तत्व ही इन दो रूपों में प्रतिभास होता है। ज्ञान वर्ग के साधकों को वह तत्व निर्गुण, निर्विशेष, निराकार, निरीह एवं निरुपाधिक अनुभव होता है, परन्तु भक्तिमार्ग के साधक उनके साथ उसके दर्शन सगुण, सविशेष, साकार, सर्वशक्तिमान तथा निजस्वरूप से सर्वथा अभिन्न नाम रूप से संयुक्त स्वरूप में करते हैं। मानसकार ने कहा है :

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
एकु दारुगत देखिअ एका। पावक सम जुग ब्रह्म बिवेका॥

ब्रह्म के दो स्वरूप हैं—अगुण और सगुण। दोनों ही अनिवर्चनीय, अगाध और अनूप हैं। ये दोनों अग्नि की तरह दो रूपों में प्रकाशित होते हैं। निर्गुण तो उस अग्नि के समान है जो लकड़ी में अदृश्य रूप में रहती है और सगुण उस अग्नि के समान है जो आंखों से प्रत्यक्ष दीखती है।

"सगुनहि अगुननि नहिं कुछ भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा॥"

इन दोनों स्वरूपों में कुछ भेद नहीं है, जैसे जल और ओला दोनों जल ही हैं, वैसे निर्गुण और सगुण दोनों तत्वतः एक ही परतत्व ब्रह्म के दो स्वरूप हैं। तत्वतः एक स्वरूप होने पर भी मानसकार ने इनकी उपलब्धि तथा उपासक के प्रति आकर्षण, करुणा एवं माधुर्य रस की दृष्टि से इनमें भेद का प्रतिपादन किया है। उन्होंने कहा है :

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहीं कोई।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होई॥

पूज्यपाद गोस्वामी जी ने सगुण-ब्रह्म की दुर्ज्ञेयता एवं दुर्लभता के वर्णन-व्याज से उसकी उत्कृष्टता भी निरूपित की है। सगुण की दुर्ज्ञेयता और दुर्गमता में सबसे बड़ा सहारा मानस ने यह लगाया कि वह सगुण ब्रह्म स्वयं अपने आप को जनाता है। जिसको वह स्वयं जानता है वह उसे जान भी लेता है—'सोई जानत जेहि देहु जनाई।' केवल जान ही नहीं लेता है, सगुण ब्रह्म अपने जान लेने वाले भक्तों के वशीभुत तक हो जाता है :

भगत प्रेम बस सगुन सो होई।

परन्तु निर्गुण ब्रह्म में इस गुण का नितान्त अभाव है। उसमें भक्त प्रेमवश्यता, करुणा का निवास कहां है ? वह तो एकरस, निर्गुण एवं निरीह है। यही कारण है कि सगुण ब्रह्म की निरहेतुक असीम करुणा गुण-माधुरी में जिसका एक बार मन भटका, फिर वह वहीं अटका ही

रह गया ।

निर्गुण स्वरूप की अपेक्षा सगुण स्वरूप को ही सबने अपना उपास्य तत्व माना है और फिर निर्गुण ब्रह्म का चिन्तन मार्ग कहने में कठिन, सुनने-समझने में कठिन, आचरण में कठिन है । उसकी प्राप्ति की कोई गारंटी नहीं । घुणाक्षर न्यायवत् कुछ बन भी पड़े तो उसमें अनेक विघ्नों की आशंका है :

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन विवेक ।
होई घुणाक्षर न्याय जो पुनि प्रत्यूह अनेक ।।

सबसे मजे की बात यह है कि निर्गुण ब्रह्म की चरम उपलब्धि का नाम है सायुज्य मुक्ति या कैवल्य पद, जिसको वेद अति दुर्लभ कह-कहकर पुकारते हैं । वही कैवल्य पद सगुण उपासकों को अनायास बिना मांगे अपने आप प्राप्त होता है, परन्तु वे उसे ठुकरा देते हैं, उसका निरादर करते हैं—

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद । संत पुरान निगमागम वद ।
राम भजत सोइ मुकति गोसाई । अनइच्छित आवहि बरिआई ।।

दूसरी ओर सगुण ब्रह्म का चिन्तन मार्ग :
'सब साधन कर सुफल सुहावा'
'सकल सुमंगल मूल जग रघुबर चरण स्नेह ।'

मानस का प्रतिपाद्य विषय सगुण-ब्रह्म चिन्तन ही सिद्ध होता है । एक विषय विचारणीय है । मानसकार ने जहां सगुण ब्रह्म का महिमा-उत्कर्ष निरूपण किया है, वहां निर्गुण ब्रह्म का ही आश्रय लिया है :

अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।।
व्यापक अकल अनीह अज निर्गुण नाम न रूप ।
भगत हेतु नानाविध करत चरित्र अनूप ।।

अतः ऐसा लगता है कि सगुण ब्रह्म की प्रतिष्ठा या मूल आधार निर्गुणानिराकार ब्रह्म है । निर्गुण ब्रह्म ही परात्पर तत्व है और नाम-रूप की उपाधियुक्त होकर वही सगुण ब्रह्म होता है : नाम-रूप दुई ईश उपाधी ।

परन्तु सूक्ष्म विचारपूर्वक देखा जाए तो यह मत प्रस्थानत्रय-श्रुति, स्मृति एवं न्याय का नहीं है और वैष्णवाचार्यों द्वारा भी अनुमोदित नहीं है । और न ही यह मत वैष्णव शिरोमणि सन्त श्री तुलसीदासजी का मनोभीष्ट हो सकता है । कारण कि सगुण की प्रतिष्ठा या आधार निर्गुण नहीं हो सकता । निर्गुण निराकार का आधार सगुण ही हुआ करता है । सुगंधि एवं रश्मि निर्गुण निराकार हैं । इनके आधार कस्तूरी एवं सूर्य सगुण साकार हैं । और फिर परात्पर सगुण ब्रह्म श्रीकृष्ण भगवान ने स्पष्ट कहा है—

"ब्रह्माणां प्रतिष्ठा हं"
निर्गुन ब्रह्म की प्रतिष्ठा मैं सगुन ब्रह्म हूं ।।

वास्तव में जो सर्वविधि पूर्ण है वही है परात्पर तत्व. जिसमें गुण नहीं, आकार नहीं, इच्छा नहीं, क्रिया नहीं, करुणा नहीं, इत्यादि इतने अभाव है कि वह परात्पर तत्व पद् का बोधक कैसे हो सकता है ? अतः निर्गुण-सगुण चिन्तन विषयक निष्पक्ष विवेचना से यही सिद्ध होता हैं कि परात्पर तत्व हैं सगुण ब्रह्म श्रीराम और वे प्रतिष्ठा हैं निर्गुण ब्रह्म की । मानसकार ने सगुण ब्रह्म का परात्पर तत्व स्थापन करने में अतिशय प्रतिभा-कौशल से काम लिया है । अन्यान्य वैष्णवा-चार्यों ने जहां तत्कालीन अद्वैत या निर्गुण-चिन्तनवाद की प्रस्थानत्रय के आधार पर आलोचना कर सगुण ब्रह्म का चिन्तन वाद या भक्ति पथ का प्रस्थान किया एवं सगुण ब्रह्म को ही अव्यय ज्ञान तत्व या परात्पर तत्व घोषित किया, वहां सगुणोपासक सन्तप्रवर मानसकार ने निर्गुण-वाद की ही ओट लेकर निर्गुणवाद प्रवाह में बहते हुए अखण्ड या परमार्थ-पथ पथिकों को सगुण ब्रह्मोपासना माधुरी-आस्वादन का सौभाग्य प्रदान किया । उन्होंने अर्थ-धर्म-काम की भांति निर्गुण की उपलब्धि रूप मुक्ति को भी तुच्छ जानकर श्रीरामचन्द्र के चारुचरणारविन्द की भक्ति का वरदान मांगकर अपने मनोभीष्ट की इन शब्दों में घोषणा की—

अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहऊं निर्वान ।
जनम जनम रति राम पद, यह वरदान न आन ।।

पावन जस कि पुण्य बिनु होई । बिनु अघ अजस कि पावै कोई ।

मानस में गुरु-शिष्य परम्परा

—डा० शरणविहारी गोस्वामी

भारतीय जीवन में गुरू का महत्व सर्वोपरि है। माता-पिता बच्चे को जन्म देते हैं परन्तु उसे इस जगत् का, जगत् के सम्बन्धों का, कर्तव्यों का, यहां तक कि परमेश्वर का स्वरूपात्मक ज्ञान होना गुरू के बिना संभव नहीं है। रामचरित मानस भारतीय जीवन एवं सामाजिक आदर्शों का विश्वकोष है। एक ऐसी विलक्षण कृति है, जहां से समाज, संस्कृति, धर्म, मुक्ति, शक्ति सभी के आदर्शों का, मार्गों का सहज दोहन हो सकता है। गुरू के सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसीदास जी ने अनूठे वाक्य कहे हैं। उनकी महिमा का वर्णन किया है। गुरू के प्रति शिष्य का कैसा आचरण होना चाहिए, उसे उत्तम चरित्रों द्वारा चरितार्थ किया गया है। कपटी गुरुओं के प्रति सावधान रहने की चेतावनी दी गई है।

रामचरित मानस मंगलाचरण में गुरू वन्दना के रूप में गोस्वामी जी ने एक श्लोक में गुरू के स्वरूप एवं उनके महत्व का प्रतिपादन किया है :

बन्दे बोध मयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोपि चन्द्रः सर्वत्र वन्दते।

गुरू को साक्षात हरि का नर रूप मानकर तुलसी ने उनके चरणों की बन्दना की है उनके सूर्य किरण सदृश बचनों से महामोह रूपी अंधकार का विनाश सहज ही होता है :

वंदउ गुरू-पद-कंज, कृपासिंधु नररूप हरि।
महामोह तम-पुंज जासु वचन रवि कर निकर॥

कुलगुरू

हमारे समाज में गुरू का स्थान इतना महत्वपूर्ण है कि गुरू एक व्यक्ति न होकर गुरू एक संस्था, एक परम्परा बन गई है। 'कुलगुरू' की अपनी परंपरा सर्वत्र होती है। रामचरित मानस में अयोध्या के राजवंश के कुलगुरू वशिष्ठ हैं। वे राजा को राजनीति, धर्म, शिक्षा, परिवार आदि समस्त विषयों में उपदेश देते है, नीति निर्धारण करते हैं। उनके आदेश के अनुसार ही सभी कार्य किये जाते हैं। वे ही राज्य के ज्योतिषी हैं, शिक्षा के अधिष्ठाता है, रघुवंश के नियामक है। विश्वामित्र के मांगने पर दशरथ राम लक्ष्मण को उन्हें देने के लिए प्रस्तुत नहीं थे, परन्तु जब वशिष्ठ जी ने उन्हें अनेक विधियों से समझाया तो उनका संदेह नष्ट हो गया और उन्होंने विश्वामित्र जी को बालक दे दिए। वशिष्ठ जी की आज्ञा दशरथ, राम, भरत, लक्ष्मण सभी को परंपरागत रुप में शिरोधार्य है। कोई संस्कार, उत्सव, यात्रा एवं अन्य कार्य गुरू की आज्ञा के बिना संपन्न नही होते। 'कुलगुरू' की इस महान परंपरा का रामचरित मानस में विशद उल्लेख हुआ है।

शिक्षागुरू

शिक्षागुरू का रामचरित मानस में विश्वामित्र के रूप में आकर्षक चित्रण हुआ है। भारत में शिक्षा गुरू केवल शुल्कक्रीत भृत्य नहीं होता। वह सदाचारी ऋषि हैं, समाज पर आई विपत्तियों के निवारणार्थ कृत

संकल्प है। ऐसे गुरू विश्वामित्र जी के चरणों में रहने का सौभाग्य राम को मिला। उनके सानिध्य में उन्होंने असुरों का संहार करते हुए व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त की। ग्रंथादि के अध्ययन को तो वे इससे पूर्व ही गुरू गृह में जाकर अल्पकाल में ही सम्पन्न कर चुके थे।

घर में भी राम को यही सदाचार की शिक्षा प्राप्त हुई थी :
प्रातःकाल उठि के रघुनाथ मातु पिता गुरू नार्वाहं माथा।
यहां भी वे गुरु के जागने से पहले उठ जाते थे।
'गुरु ते पहले जगतपति जागे राम सुजान'
गुरु के शयन करने पर वे उनके चरण दबाते हैं!
लगे चरन चापन दोऊ भाई।
गुरु को इन दोनों भाइयों ने अपने प्रेम से जीत रखा था।
'तेइ दोऊ बंध प्रेम जनु जीते, गुरु पद कमल पलोटत प्रीते'

रामचरित मानस में गुरू-शिष्य की दूषित परम्पराओं का भी खंडन किया गया है। कपट मुनियों का किसी युग में अभाव नहीं रहा। रामचरित मानस में प्रतापभानु के प्रसंग में ऐसे ही कपट गुरु का वर्णन किया गया है। राजा अपने उत्तम संस्कारों के कारण कपट गुरु के समक्ष कहता है कि :—

राखइ गुरु जौं कोप विधाता। गुरु विरोध नहिं कोई जगत्राता॥
जौं न चलब हम कहे तुम्हारे। होउ नास नहिं सोच हमारे॥

उत्तम सिद्धान्तों की छाया में आज भी कपट गुरुओं के समक्ष सच्चे शिष्य सर्वस्व अर्पित कर डालते हैं परन्तु उससे उनका लाभ संभव नहीं है। कलिकाल में कपट गुरुओं और दुष्ट शिष्यों की भरमार हो गई है।

रामचरित मानस का प्रतिपाद्य तो राम की भक्ति है। भक्ति के मूल में वैराग्य और ज्ञान है। ज्ञान की प्राप्ति गुरु के बिना संभव नहीं है:—

बिनु गुरु होई कि ज्ञान ज्ञान कि होई बिराग बिनु।
गार्वाहं वेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने सर्वत्र हरि-गुरु का समान रूप से उल्लेख किया है। उनका यही उपदेश है कि हरि गुरु के चरणों की सेवा अभिमान छोड़ कर करने से स्वयं सुख निधान भगवान की प्राप्ति होती है :—

श्रीहरि गुरु पद कमल भजहु मन तजि अभिमान।
जेहि सेवत पाइव हरि सुख निधान भगवान॥

मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पार्वाहं बिनहिं प्रयास।
जे यह कथा निरंतर सुनहि मानि बिस्वास॥

रामचरितमानस में गृहस्थ जीवन का स्वरूप

—डा० प्रेमप्रकाश सिंह

रामचरित मानस "मानव जीवन का महाकव्य" है। गोस्वामी तुलसी दास जी ने अपने इस ग्रन्थ द्वारा हमारी अनेक प्रकार की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया है। आज परिवार का आदर्श रूप विकृत हो रहा है और परिवार का सदस्य 'मानव' पारिवारिक स्नेह और वातावरण से अलग-अलग हो रहा है। इन सभी समस्याओं का दुखद परिणाम यह है कि आज का मानव किंकर्तव्यविमूढ़ हो अवाक्-सा खड़ा किसी सुखद सन्देश की बाट जोह रहा है। गोस्वामी तुलसीदास जी के युग में गृहस्थ जीवन के आदर्श स्वरूप में जब विशृंखलता और विकृति का आभास होने लगा तभी उन्होंने अपने 'मानस' के माध्यम से गृहस्थ जीवन के विभिन्न आदर्शों को लोगों के सम्मुख रखा और रघुकुल की अद्भुत कथा के द्वारा ऐसे जीवन की परिकल्पना व्यक्त की, जो आधुनिक युग में भी हमारी सत्प्रेरणाओं का स्रोत बना हुआ है।

निन्दनीय नहीं

रामचरित मानस इस तथ्य का परिचायक है कि गृहस्थ कदापि निन्दनीय नहीं। उपनिषद् तथा ज्ञानमार्गीय परम्पराओं में सन्यास का सर्वोत्कृष्ट स्थान है। परन्तु गोस्वामी जी ने भगवान राम के गृहस्थ जीवन की जो मर्यादित झांकियां अंकित की हैं उनसे गृहस्थ जीवन का गौरव प्रतिष्ठित होता है।

गोस्वामी जी ने गृहस्थाश्रम के प्रति अपनी उच्च धारणा को मूर्तिमन्त रूप देने के लिए आदर्शभूत परिवार का आलम्बन किया है। एक आदर्श परिवार-मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के रघु-परिवार से बढ़कर भला और कौन-सा हो सकता है। तुलसीजी ने केवल वैयक्तिक या पारिवारिक जीवन तक ही अपनी दृष्टि सीमित नहीं रखी, बल्कि उन्हें उसके द्वारा सम्पूर्ण भारतीय समाज के आदर्श रूप का प्रस्तुतीकरण अभीष्ट है। साथ ही लोक-व्यवहार के लिए आवश्यक तत्वों का निर्देश किया है। गृहस्थ, पारिवारिक, सामाजिक जीवन के लिए किस प्रकार का आचरण हितकर है और किस प्रकार का अहितकर, यह भी तुलसी मानस के विविध पात्रों के व्यवहार तथा आचरण से भलीभांति स्पष्ट कर दिया गया है।

आदर्श पिता

गृहस्थ जीव अरण्यों या जंगलों में रहने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा लोक-समुदाय की इकाई के रूप घर में निवास करने वाला व्यक्ति है जिसे पिता, पुत्र और पौत्र तथा दूसरी और माता, दुहिता, प्रपौत्री आदि विभिन्न गार्हस्थिक स्थितियों में गुजरना पड़ता है। ऐसे विभिन्न व्यक्तियों का समष्टिपरक जीवन ही गृहस्थ जीवन है। तुलसीदासजी ने इन्हीं व्यष्टिओं को आदर्श रूप में चित्रित किया है। गृहस्थ जीवन में पिता किस प्रकार का होना चाहिए, इस धारणा के मूर्तिमन्त चित्र हैं: राजा दशरथ। दशरथ मानवोचित और नृपोचित गुणों में सर्वथा सम्पन्न

व्यक्ति हैं :—

अवधपुरी रघुकुल मनि राउ।
वेद विदित तेहि दसरथ नाउ।
धरम धुरन्धर गुन निधि ग्यानी।
हृदय भगति मति सारंग पानी।
रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्रान जाहिं पर बचनु न जाई।

वे एक आदर्श पिता की भांति पुत्र वियोग की असह अवस्था में काल-कवलित तो हो जाते हैं, किन्तु सत्य प्रतिज्ञ होने से नहीं चूकते। तुलसी के मानस में इस प्रकार गृहस्थ जीवन का वात्सल्य तथा पितृत्व भावना से ओतप्रोत एक मृदुल चित्र हमें मिलता है।

आदर्श पुत्र

आदर्श पुत्र का गृहस्य जीवन में क्या स्वरूप है, नयनाभिराम भगवान राम के पात्र से तुलसीदास ने इसे भी अंकित किया है। पिता की आज्ञा शिरोधार्य मानकर श्री रामचन्द्र जी जंगलों के कंटकाकीर्ण मार्ग में सहर्ष विचरण करते हैं। इससे बढ़कर भला गार्हस्थिक सामंजस्य और आत्म-बलिदान का क्या उदाहरण हो सकता है?

दाम्पत्य गृहस्थ जीवन का प्राण है। दाम्पत्य प्रेम का शिष्ट परिचय भगवती सीता के पात्र में प्राप्त है। वे स्त्रियोचित शारीरिक एवं मानसिक सुकुमारता के बावजूद निर्जन भयावह जंगलों को घर बनाना इसलिए स्वीकार्य मानती हैं, क्योंकि उनके प्रिय पतिदेव भगवान राम का सानिध्य सुख वहां निःशंक प्राप्त होता रहेगा। माता कौशल्या और रामचन्द्रजी के बार-बार समझाने पर भी सीताजी का आग्रह है कि :

प्रान नाथ तुम्ह बिनु जग माहीं।
मो कहुं सुखद कतहुं कछु नाहीं।

आदर्श भ्रातृप्रेम

भरत और लक्ष्मण भ्रातृत्व-भावना के अप्रतिम प्रतिमान हैं। बड़े भाई श्री रामचन्द्रजी के वन की ओर प्रस्थान करने का समाचार पाकर लक्ष्मण कैसे पीछे रह सकते हैं। वे अधीर हो उठते हैं :

समाचार जब लछिमन पाए।
व्याकुल बिलख बदन उठि धाए।।

भगवान राम लक्ष्मणजी को बहुत समझाते हैं कि तुम यहां रहो, परन्तु लक्ष्मणजी का भरसक अनुरोध है कि :

मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला।
मंदरु मेरु कि लेहि मराला।।
गुरु पितु मातु न जानउं काहू।
कहउं सुभाउ नाथ पतिआहू।।

इसी प्रकार के दूसरे दृष्टान्त में हैं भरत जी।

भरतजी एक आज्ञापालक सुपुत्र हैं, सच्चे भाई हैं और स्नेह के आगार हैं। राजसिंहासन के प्रलोभन से ज्येष्ठ भ्राता के प्रति क्या कभी घृष्टता प्रदर्शित कर सकते हैं? भरतजी तुलसी के अनुसार धर्म की धुरी हैं :

जो न होत जग जनम भरत को।
सकल धरम धुर धरनि धरत को।।

सजलनेत्र भरत राम के मिलाप की आशा में निरत चित्रकूट में हैं। भगवान राम उन्हें अपने हृदय से लगाते हैं।

बरबस लिए उठाइ उर, लाए कृपा निधान।
भरत राम को मिलनि लखि, बिसरे सबहिं अपान।।

इस प्रकार तुलसी के काव्य में सुख-दुःखात्मक गृहस्थ जीवन के नानाविध गार्हस्थिक चित्र अंकित हो उठें हैं, जिनकी एक-एक रेखा में आदर्श व्यक्तित्व, आदर्श जीवन और आदर्श समाज जैसे झांक रहा है।

मानस का सामाजिक पक्ष

—मुहम्मद इसराईल अंसारी

लोक चेतना के अग्रदूत गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में लोकमानस के अनुकूल एक सामाजिक व्यवस्था को संयोजित किया जो वाह्य रूप से तत्कालीन स्थितियों से प्रभावित होने के बावजूद मूल रूप में परंपरागत भारतीय सामाजिक स्वरूप पर आधारित है। भारतीय जीवन में पारिवारिक, सामाजिक और मानवीय सम्बन्धों की जो परम्परा रही है उन्हें मानस के आईने में एक दृष्टि में देखा जा सकता है।

थोड़े से अच्छे व्यक्ति यदि शीर्ष स्थानों पर रहें तो पूरे समाज को ठीक रख सकते हैं। साधुओं-संतों द्वारा रचित समस्त साहित्य में सत्संग का भारी गुणगान किया गया है। तुलसीदास भी इस क्षेत्र में किसी से पीछे नहीं हैं। इस संदर्भ में "सठ सुधरहि सत संगति पाई," और "केहि न सुसंग बड़प्पन पावा" जैसी अनेक उक्तियां हैं।

आधुनिक जीवन में निराशा और युवा-आक्रोश का जो वातावरण देखने को मिलता है उसका प्रमुख कारण यह है कि युवकों को यथोचित शिक्षा नहीं मिलती। शिक्षक के प्रति छात्र के मन में वह आदर की भावना नहीं रह गयी है, जो कभी गुरू के प्रति शिष्य के हृदय में होती थी। शिक्षकों में भी गुरुओं की तरह निष्ठा और दायित्व की भावना नहीं होती। मानस में गुरु की भूमिका को सर्वोच्च स्थान दिया है। गुरु के सामाजिक दायित्व को भी अत्यन्त गम्भीर और महत्वतूर्ण बताया गया है। गुरु के प्रति श्रद्धा के बारे में कहा गया है कि "जे गुरू चरन रेनु सिर धरहीं, ते जन सकल विभव बस करहीं।" गुरू के कर्तव्य की व्याख्या करते हुए तुलसीदास ने उसकी तुलना मंत्री और चिकित्सक जैसे विशिष्ट व्यक्तियों से की है। उनका कहना है कि इन तीनों को हर हालत में बिना किसी भय के उचित और सही बात करनी चाहिए। ऐसा न होने की स्थिति में शासन, धर्म और शरीर तीनों का शीघ्र नाश हो जाता है क्योंकि मंत्री, चिकित्सक और गुरु ही इनके रक्षक हैं :

"सचिव वैद गुरु तीनि जों, प्रिय बोलहि भय आस।
राज धर्म तन तीनि को होइ बेगिही नास॥

रामायण से प्रभावित सहज स्वभाव के लोग, खास कर ग्रामीण आज भी मानस की भाषा में अपनी विनयशीलता प्रदर्शित करते हैं।

"नाथ सकल संपदा तुम्हारी, मैं सेवक समेत सुत नारी" या "हम सेवक परिवार समेता, नाथ न सकुचब आयसु देता", आम तौर पर दुहराई जाती हैं। आतिथ्य के अवसरों पर "हमरे कुशल तुम्हारिहि दाया" और "बिनु हरि कृपा मिलहि नहिं संता"

लोकमानस को सामाजिक स्थितियां बहुत हद तक प्रभावित करतीं हैं। एक संपन्न व्यक्ति, दान, करुणा, विनयशीलता और न्याय के संपूर्ण दर्शन को समझ सकता है और चाहे तो कुछ हद तक या बहुत हद तक

अपने जीवन में उतार सकता है, लेकिन एक बहुत गरीब दाने-दाने को मोहताज व्यक्ति इन बातों को चाह कर भी नहीं समझ सकता। शायद यही कारण है कि मानस में दरिद्रता को ही सगसे बड़ा दुःख कहा गया है।

"नहि दरिद्र सम दुख जग माही।"

समाज के समर्थ वर्ग पर परोपकार की जिम्मेदारी शायद इसीलिए लादी गयी है जिससे भाग्यहीन, दुःखी और अकिंचन लोगों का भी कल्याण हो सके। मानस में दूसरों की भलाई को सर्वोच्च स्थान दिया गया है।

परहित बस जिनके मन प्राही।
तिन्ह कहं जग दुर्लभ कछु नाही ।।

मानस के नीति वचन बेजोड़ हैं। लोक-जीवन में इनका विशेष महत्व है। तुलसीदास बड़े स्वाभिमानी व्यक्ति थे। उनका कहना था कि बिना बुलाये किसी के यहां नहीं जाना चाहिए।

जदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा।
जाइअ बिनु बोलेहु न संदेहा ।।
तदपि विरोध मान जंह कोई।
तहां गये कल्याण न होई ।।

अंत में मानस में सर्वजन हिताय जिस सुखी, समृद्ध और भयमुक्त राज या सामाजिक व्यवस्था की कल्पना की गयी हैं, उसका उल्लेल करना प्रासंगिक होगा क्यों कि आज भी हम प्रजातंत्र के द्वारा रामराज्य प्राप्त करना चाहते हैं। तुलसीदास ने एक ऐसी शासन व्यवस्था की कल्पना की है जिसमें कोई व्यक्ति दुखी नहीं होगा, कोई मूर्ख नहीं होगा, सब एक दूसरे से प्रेम करेंगे। सभी रोग मुक्त और दीर्घजीवी होंगे। दुनिया के लिए यह आज भी एक सपना है, लेकिन गोस्वामी ज़ी ने चार सौ साल पहले यह सपना देखा था और इसे समस्त मानव जीवन के लिए एक उपहार स्वरूप भेंट किया था।

कोमल चित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया ।।
सबहि मान प्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी ।।

मानस में शिष्टाचार

—रामगोपाल विद्यार्थी

संसार के वर्तमान व्यवहार में शिष्टाचार सामान्यतः समुचित वाक्-प्रदर्शन और बाह्य व्यवहार ही समझा जाता है, किन्तु भारतीय शिष्टाचार और विशेषतः मानस का शिष्टाचार पूर्ण नैतिकता से ओत-प्रोत है। मानस का शिष्टाचार यदि शरीर है तो नैतिकता इसकी आत्मा। भारतीय धर्म-परम्पराओं और नैतिकता के मूल्य से रहित केवल वाणी और दिखावे का मानस में न कोई मूल्य है और न स्थान। गोस्वामी तुलसीदास ने मानस में विभिन्न प्रसंगों पर अपने आदर्श पात्रों द्वारा जिस शिष्टाचार का निर्वाह कराया है वह न केवल अनुकरणीय है, अपितु भारतीय समाज का आधार और मूर्तिमान आदर्श भी है। मानस का शिष्टाचार आनन्ददायक तो है ही, किन्तु उससे अधिक वह लोककल्याणकारी है।

श्रीराम के त्यागमूलक राजनैतिक शिष्टाचार का यह अनूठा आदर्श है। भरत की गहरी राजनैतिक शिष्टता और नम्रता आदर्श है।

तजि श्रुति पंथ बाम पथ चलहीं। बंचक बिरचि बेष जगु छलहीं।।
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ। जननी जौं नहु जानौं भेऊ।।

श्रीराम की वानरी सेना समुद्र पर है। रावण का छोटा भाई विभीषण रावण से फूटकर भगवान से मिलने जाता है। वानर उसके आने के रहस्य को समझ नहीं पाते। यहां पर श्रीरामचन्द्र जिस राजनैतिक शिष्टता का परिचय देते हैं वह अभूतपूर्व है :

जो समीप आवा सरनाई। रखिहौ ताहि प्रान की नाई।।

जब विभीषण आया तो राम ने 'भुज विसाल गहि हृदय लगावा' और बड़ी नम्रता से पूछा :

खल मंडली बसहु दिन राती। सखा धर्म निबहै केहि भांती।

श्रीराम ने शिष्टतावश समुद्र से मार्ग प्रदान करने के लिए विनय की, किन्तु जब उन्हें विनय द्वारा समुद्र ने पार जाने का कोई मार्ग नहीं दिया तो उनको राजनीति का रहस्य बताना पड़ा—

विनय न मानत जलधि जड़, गए तीन दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होहि न प्रीति।।

श्रीराम ने रावण के साथ पग-पग पर राजनैतिक सौजन्य एवं शिष्टता का परिचय दिया। अयोध्या में अपने वानर-बन्धुओं का परिचय श्रीराम ने गुरु वशिष्ठ से इन शब्दों में करवाया :

पुनि रघुपति सब सखा बुलाए। मुनि पद लागहु सकल सिखाए।।
गुरु वसिष्ठ कुल पूज्य हमारे। इनकी कृपा दनुज रन मारे।।

यह सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भये समर-सागर कह बेरे ॥
मम हित लागि जनम इन हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पियारे ॥

राजनैतिक शिष्टाचार के अतिरिक्त रामचरितमानस में हमें पग-पग पर सामाजिक व धार्मिक शिष्टाचार के अमूल्य उपदेश मिलते हैं। किशोर राम प्रातःकाल जाग कर माता-पिता को नमस्कार करते हैं और अपने सारे दैनिक कार्यों में बड़ों की आज्ञा से ही प्रवृत्त होते हैं :

प्रात काल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा ॥
आयुस मांगि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषहिं मन राजा ॥

लोक कल्याण के लिए किए जाने वाले यज्ञादि में राक्षसों द्वारा विघ्न डाले जाने पर विश्वामित्र मुनि अपनी रक्षा के लिए रामलक्ष्मण को मांगने राजा दशरथ के दरबार में आते हैं :

मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयेऊ लै विप्र समाजा ॥
चरन पखारि कीन्ह अति पूजा। मो सम आज धन्य नहिं दूजा ॥

जनकपुर देखने को लखन लालायित हैं, किन्तु मुनि विश्वामित्र और बड़े भाई राम के संकोचवश कुछ कह नहीं पाते :

लखन हृदय लालसा विसेषी। जाहि जनकपुर आइहि देखी ॥
प्रभु भय बहुरि मुनिहि सकुचाहीं। प्रकट न कहहिं मनहिं मुसकाहीं ॥

श्रीराम छोटे भाई की मनोदशा को ताड़ जाते हैं, किन्तु उन्हें भी गुरू के प्रति शिष्टाचार का निर्वाह तो करना ही है :

परम विनीत सकुच मुसकाई। बोले गुरु अनुशासन पाई ॥
नाथ लखन पुर देखन चहहीं। प्रभु संकोचबस प्रकट न कहहीं ॥
जौं राउर अनुशासन पावौं। नगर दिखाय तुरत ले आवौं ॥

'बेनी' कवि कहै मानो-मानो प्रतीति यह
पाहन-हिये में कौन प्रेम उपजावतो।
भारी भवसागर उतारतो कवन पार
जो पै यह रामायन तुलसी न गावतो ॥

रामचरितमानस मस्तिष्क का नहीं, हृदय का गीत

—कपीन्द्र

'स्वान्तः सुखाय- रघुनाथ गाथा' कहकर जिस संतने आत्मोल्लास का चरम सुख केवल अपने जीवन में ही प्राप्त नहीं किया, वरन् अपनी विमलवाणी की धारा में अवगाहन कराकर विश्व के करोड़ों प्राणियों को आनन्द सुधा पिलाकर अमर कर दिया, उस महान, संत-शिरोमणि, कवि कुल चूड़ामणि, भगवद् चरणारविद रस रसिक गो० तुलसीदास के कृतित्व का मर्म समझने के लिए मानव मस्तिष्क की विचार श्रृंखला ही पर्याप्त नहीं है। मानव के चंचल मन की भी गति वहां तक पहुंचने में असमर्थ सिद्ध होती हैं। काव्य और कविता की परिभाषा करते हुए तुलसीदास हृदय की गहराइयों में घुसकर उदघोष करते हैं :—

हृदयसिंधु मति सीप समाना।
स्वाति शारदा कहहिं बखाना।।
जौं बरषै बरवारि बिचारू।
होहिं कवित मुक्तामणि चारू।।

मानव का हृदय सिंधु है, और उसकी मति (बुद्धि) ही सीप है। मां शारदा रूपी स्वाति का सुयोग लिए हुए विचार की धारा जब बरस पड़ती है तब काव्य-मुक्तामणि का जन्म होता है। ऐसे ही मोतियों को अपनी युक्तियों से वेधकर एवं श्री राम जी के चरित्र-सूत्र में पिरोकर यदि सत्पुरुष (विद्वद्वर्ग) अपने कंठ में पहने लेते हैं, तभी उनकी अनुराग मयी शोभा से तन जगमगा उठता है। गोस्वामी तुलसी दास का व्यक्तित्व इसी हार की शोभा से दीप्तिमान हो रहा है। जो समाज के प्रत्येक वर्ग को प्रकाश दिखाता हुआ चला जाता है। उन्होंने अपनी रचना में इसी दीप्ति से जगमगाते हुए सितारों का बार-बार उल्लेख किया है। श्री राम के नाम की महिमा के प्रसंग में वह लिखते हैं—

राम नाम मणि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरो-जो चाहसि उजियार।।

तुलसी के मानस के सर्व प्रथम वक्ता आशुतोष भगवान शिव तो यहां तक कह उठते हैं कि—

सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे।
आवत हृदयं सनेह विशेषे।।

राम को देखे बिना भी यदि उनका नाम स्मरण मनुष्य अपने दैनिक व्यवहार जगत में करता रहे तो हृदय में प्रेम की अजस्त्र धारा प्रवाहित होती रहेगी और क्रिया कलाप में कोई कभी नहीं होगी। यही तो जीने की वह कला है जिससे प्रबुद्ध जीवन भी आलोकित होता रहेगा।

महर्षि याज्ञवल्क्य, कागभुशुंडि और स्वयं गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने भी गुरु-मुख से श्रवण करके उस कथा को एक बौद्धिक खिलवाड़ न समझकर "बुध-विश्राम" और "सकल जन रंजिनि" कथा को लिखा।

अबढर दानी शंभु ने अपने विमल-मानस में उसे संजोकर रखा, उन्हीं की कृपा से तुलसी के हृदय में वह कथा विकासित हो उठी और पुष्पित थात पल्लवित हो गई :

शंभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी ।
राम चरित मानस कवि तुलसी ।।

तुलसी की इस धारणा के मूर्तिमान प्रतीक महात्मा भरत, वीर लक्ष्मण, मां कौसिल्या, सुमित्रा, निषाद, केवट और शबरी आदि सभी पात्र श्रीराम के हृदय में स्थान देकर ही उपकृत हुए हैं। बाकी सारे सद्गुण इन पात्रों में गौण हैं। इन पात्रों के चरित्र इस बात के द्योतक हैं कि :—

साधन सिद्धि राम पदनेहू ।

सभी साधनों कीसिद्धि इसी में है कि हृदय श्री राम के प्रेम में सरा-वोर हो उठे। इसीलिए मेरा यह निश्चित मत है कि श्री रामचरित मानस मस्तिष्क का नहीं बरन हृदय का गीत है। गोस्वामी जी ज्ञान और कर्म की अवहेलना नहीं करते। उनके विचार में ज्ञान जीवन को आलोकित करता है और कर्म पथ पर अग्रसर होने के लिए उत्प्रेरित करता है, परन्तु, हृदय यदि हार गया तो व्यक्ति आलोकित और कर्मठ होते हुए भी जीवन को स्पंदनहीन कर देगा। जैसा कि आमतौर से प्रसिद्ध ही है—

हृदय हारि हारिउं सब ओरा ।

श्री राम से विलग होते हुए मंत्री सुमंत सहसा विलखते हुए कह-उठते हैं।

हृदय न विदरेउ पंकजिमि बिछुरत प्रीतम नीर ।
जानत हूं मोहि दीन विधि-यहु यातना सरीर ।।

बालि से युद्ध करते समय सुग्रीव बड़ी हिम्मत से लड़ने गया था; परन्तु श्रीराम, लक्ष्मण और महाबली हनुमान जैसे पृष्ठ पोषकों के होते हुए भी उसका हृदय हार गया। परिणाम क्या हुआ :

बहुछल बल सुग्रीवकर-हिय हारा भय मानि ।

छल-बुद्धि कौशल है और बल कर्मठता का प्रतीक है। सुग्रीव ने जय से लिए बुद्धि कौशल और शारीरिक बल का प्रयोग किया परन्तु अंत में हृदय हार गया इसीलिए मैदान छोड़कर भागा। संभवत हृदय कमजोर पड़ने पर हर बुद्धिवादी कर्मयोगी की यही दशा होती है।

महाभारत युद्ध में परम तेजस्वी अर्जुन का हृदय-युद्ध के परिणामों को सोचकर बैठने लगा था। वह कर्तव्य से भागने की तैयारी में अनेक युक्तियों का सहारा ढूंढ़ने लगा। भगवान ने उसकी इस हार्दिक दुर्वलता को ताड़ लिया। इसीलिए गिरते हुए हृदय को उत्प्रेरित करने की जो रागिनी छेड़ी वही तो गीता है। उसमें उन्होंने स्पष्ट संबोधन किया :

क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्तोत्तिष्ठ परंतप ।

हृदय की इस क्षुद्र दुर्बलता को छोड़कर उठो तुम्हारा शौर्य तुम्हें चुनौती दे रहा है :

इन्द्रियाणि पराण्याहुःइन्द्रियेभ्य परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धि यो बुद्धे परतस्त सः ।।

संसार में विषयों से परे इदियां, इन्द्रियों से परे मन, मन से परे बुद्धि बुद्धि से भी परे आत्मा है। उसी की ओर बढ़ो —यही वेद कहते हैं—

तमसो मा ज्योतिर्गमय ।

तुलसी के प्रत्येक वर्ण, अर्थ रस और छंद में इसी शास्वत रागिनी की गूंज से विश्व को एक नव-आलोक प्राप्त हो रहा है।

अंत में मैं हृदय से अत्यंत विनम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूं कि श्रीरामचरित मानस में बुद्धि जीवियों को चिन्तन की पर्याप्त सामग्री प्राप्त होगी। परन्तु हृदय से इस रस सिंधु में अवगाहन करने वाले भक्तों को दैहिक, दैविक और आध्यात्मिक सभी उपलब्धियां होगी :

मन कामना सिद्धि नर पावा ।
जो यह कथा कपट तजि गावा ।।

राष्ट्र निर्माण में रामचरितमानस का योग

—बदरीनाथ शास्त्री

रामचरितमानस राष्ट्र निर्माण के कार्य में कहां तक सफल हो सकता है इसका विचार करने के लिए पहले यह जान लेना आवश्यक है कि राष्ट्र निर्माण का क्या प्रयोजन है। 'राष्ट्र' मनुष्यों के उस समुदाय को कहते हैं जो पृथ्वी के किसी निश्चित भाग पर एक शासन में रहता हुआ परस्पर एकता पूर्वक अपने समस्त अंग प्रत्यंगों की शारीरिक, मानसिक एवं राजनैतिक उन्नति में दत्तचित्त हो। प्रत्येक राष्ट्र में भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग रहते हैं जो विभिन्न धर्मों से सम्बन्ध रखते हैं। हमारा भारतवर्ष एक विशाल देश है। जो विचारधारा इन सब लोगों को माला की तरह एक सूत्र में बांधती है, वही राष्ट्र के निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकती है। उसका सम्बन्ध बाह्यरूप से अर्थात् भाषा, परिधान, आदि से नहीं होता, अपितु आन्तरिक सद्भावना से।

प्राचीनकाल से भारतवर्ष के निवासी उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम समस्त भारतवर्ष को एक भूखण्ड मानते आये हैं। अनादिकाल से हिन्दुओं द्वारा किया जानेवाला पूजापाठ इसका प्रमाण है। स्नान के समय हिन्दू गंगा, यमुना, गोदावरी आदि के नाम को बड़ी श्रद्धा से उच्चारण करता है। इसी प्रकार द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग और चारों धाम आदि के नाम प्राचीन हिन्दुओं की देश सम्बन्धी विशाल कल्पना के द्योतक हैं। भगवान् राम और श्रीकृष्ण आदि केवल भारत के आराध्य नहीं है, उनकी कथा सर्वत्र व्यापक है।

भावों और व्यवहारों की विचित्र एकता की उन्नति करने में संत तुलसीदास की अमर रचना रामचरितमानस ने अपने समय में प्रशंसनीय कार्य किया है। धार्मिक असहिष्णुता अथवा द्वेष को मिटाने में इस लोकप्रिय महाकाव्य ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। उस समय शैव तथा वैष्णव इन दोनों संप्रदायों में आपस में विरोध था। दोनों आपस में ईर्ष्या की भावना से देखते थे। संकीर्णता ने दोनों को घेर लिया था। ऐसी विषम परिस्थिति में रामचरितमानस ने दोनों के मनों में एक दूसरे के प्रति बन्धुत्व का भाव जागृत कर दिया। तुलसीदास की निष्काम भक्ति के प्रवाह ने जनता के तुच्छ तथा संकीर्ण विचारों और मनोविकारों को बहा दिया और वे उनके स्वर में स्वर मिलाकर कहने लगे :

मांगत तुलसीदास कर जोरे। बसहिं रामसिय मानस मोरे॥

ऐसे निष्काम भक्तों को एक दूसरे से झगड़ा करने या बुरा-भला कहने अथवा धार्मिक आक्षेप करने का अवकाश ही कहां हो सकता है? उनके लिए तो शैव, शाक्त या वैष्णव आदि का कुछ भेदभाव ही नहीं रह जाता। वे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी सबमें बन्धुत्वभाव का अनुभव करते हैं और सब धर्म प्रवर्तकों या आचार्यों में आदर बुद्धि रखते हुए प्रेमपूर्वक गाते हैं :

बंदउं सबहि राम के नाते ।
अथवा
सीय राममय सब जग जानी ।

यही भावना राष्ट्रनिर्माण के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यदि हम सारे विश्व को सीता और राम का रूप समझें अथवा राम के नाते सबों के साथ व्यवहार करें ऐसी अवस्था में हमारा कोई शत्रु नहीं है, चाहे कोई अमेरिका का हो, कोई रूस का, कोई जापान का या कोई किसी देश का । हम सब एक ही कुटम्ब के हैं । न कोई ऊंचा है, न कोई नीचा है । सब एक समान हैं । इस प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय भावना को अपनाने से हमारे समाज की, हमारे देश की सब समस्याएं दूर हो जाएंगी । भाषाविवाद, कलह, साम्प्रदायिकता आदि कुभावनाएं अवश्य-मेव समाप्त हो जायेंगी । संकीर्णता तथा जातिभेद की भावना देश के लिए घातक हैं । अतः अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाने से ही राष्ट्र आगे बढ़ सकता है । यदि राष्ट्र बड़ा हो किन्तु लोग उसमें चरित्रशील, सत्य-निष्ठ तथा कर्तव्य परायण न हों, तो ऐसा राष्ट्र अवश्य अवनति के गर्त में गिर पड़ता है । रामचरितमानस हमारे सामने कैसे सुंदर और अनु-करणीय आदर्शचरित्र उपस्थित करता है । राम जैसे प्रजारञ्जक राजा, लक्ष्मण जैसे भ्रातृप्रेमी, भरत-जैसे त्यागी, सीता जैसी पतिव्रता, हनुमान जैसे आज्ञानुवर्ती सेवक, कौशल्या जैसी माता । इनका अनुसरण करने-वाले व्यक्तियों का समाज राष्ट्रनिर्माण के लिए कितना अनुकूल होता है । सचमुच रामचरितमानस इस आणविक युग में भी राष्ट्रीयभावना के विकसित करने में सहायक तथा सफल सिद्ध हो सकता है । इस ग्रन्थ रत्न के समुज्ज्वल आदर्शों पर चलने से मनुष्य अवश्य जीवन में सफल होकर राष्ट्र को भी उन्नति के शिखर पर पहुंचाने में समर्थ होता है । यदि इस मानस को राष्ट्रीय एकता का प्रतीक माना जाये, तो कोई अत्युक्ति न होगी ।

"मम माया संभव संसारा । जीव चराचर विविध प्रकारा ।।
सब मम प्रिय सब मम उपजाए । सब ते अधिक मनुज मोहि भाए ।।"

—राम (उत्तर काण्ड)

मानस में नारी और उसका महत्व

—तारकेश्वर पाण्डेय

प्रातः स्मरणीय कविकुल चिन्तामणि गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' भारतीय संस्कृति की एक कालजयी रचना है। सृष्टि में नारी का महत्व प्रारम्भ से ही रहा है। पुरुष नारी के संयोग से ही शक्तिवान बनता है। तुलसीदास जी के जीवन स्तर को भी ऊंचा उठाने में नारी का विशेष योगदान रहा है। सृष्टि का एक महत्वपूर्ण अंग होने के कारण गोस्वामीजी ने अपने मानस में नारी भावना को भी स्थान दिया है। इनके नारी विषयक दृष्टिकोण दो रूपों में अभिव्यक्त हुए हैं :

नारी पात्रों के चरित्र चित्रण में।
नारी विषयक मान्यताओं के सैद्धांतिक निरूपण में।

तुलसीदास जी ने नारी पात्रों को दो वर्गों में चित्रित किया है।

१. सत्पात्र के रूप में।

२. असत्पात्र के रूप में।

उनके पास सत् और असत्, धर्म और अधर्म सबका मानदण्ड राम-भक्ति है। अतः राम की ओर राग रखने वाले जीव को ही उन्होंने श्रेष्ठतम माना है। राम के प्रति दुर्भावयुक्त और रावण के प्रति अनुरक्त जीव को गोस्वामी जी ने हेय माना है। यही कारण है कि गोस्वामीजी ने रावण की पत्नी मंदोदरी को गौरवपूर्ण स्थान दिया है तथा भरत की माता कैकेयी को खरी-खोटी सुनाई हैं।

तुलसी साहित्य में सत् चरित्र नारी पात्रों की संख्या बहुत बड़ी है। यहाँ पर मैं केवल उन्हीं प्रसंगों को ले रहा हूं, जिनको लेकर तुलसीदास जी पर नारी निन्दा का दोष मढ़ दिया जाता है। प्रायः तुलसीदासजी की निम्नांकित उक्ति को लेकर उनपर नारी के प्रति हेय दृष्टिकोण का दोषारोपण किया जाता है :

ढोल गंवार सूद्र पशु नारी।
सकल ताड़ना के अधिकारी।

यहां पर 'सकल' और 'अधिकारी' शब्दों पर ध्यान देना होगा। यह उक्ति गोस्वामीजी ने समुद्र के मुख से मर्यादा की रक्षा के लिए कहलवायी है। भगवान राम जब लगातार तीन दिन तक लंका में प्रवेश करने के लिए समुद्र से उसके सूख जाने की प्रार्थना करते रहे। जब वह न माना तब उन्होंने लक्ष्मण जी से यह कहा कि :

"लक्ष्मण वान सराहिए, बिनुभय होत न प्रीति।"

जब लक्ष्मण वान छोड़ने चले थे तभी अपने को जड़ समझने वाले अनुत्तम पात्र समुद्र ने उपर्युक्त उक्ति कही। अपनी बात को प्रभाव-

शाली ढंग से प्रस्तुत करने के लिए अन्य दृष्टान्तों के साथ ही साथ 'नारी' का भी अप्रस्तुत विधान किया गया है। समुद्र ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम से निवेदन किया कि आप मर्यादा की रक्षा के लिए अवतरित हुए हैं और आप ही मुझे अपनी मर्यादा छोड़ने को बाध्य कर रहे हैं। मैं यदि अपनी मर्यादा को छोड़ दूं तो असंख्य जीव जन्तु जो मेरी शरण में पल रहे हैं, मृत्यु को प्राप्त हो जायंगे। अतः हे ईश्वर, इस संसार में जो भी अपनी मर्यादा को छोड़ते हैं वे निश्चित रूप से ताड़ना यानी दण्ड के अधिकारी हैं। अधिकारी शब्द से ध्वनित होता है कि **'ताड़ना'** नियम नहीं है। आवश्यकतानुसार 'ताड़ना' की जानी चाहिए। साथ ही साथ नारी के सम्बन्ध में दुष्ट रावण की भी उक्तियां विचारणीय हैं :

समय सुभाउ नारि कर सांचा। मंगल महु भय मन अति कांचा ।।
नारि सुभाउ सत्य कवि कहईं। अवगुण आठ सदा उर रहईं ।।
साहस, अनृत, चपलता माया। भय अविवेक असौच अदाया ।।

ज्ञातव्य है कि ये युक्तियां सिद्धांत-वाक्य नहीं हैं, स्वभाव कथन हैं। मानस में जिस प्रसंग में और जिस ढंग से यह बात कही गई है उससे किसी गंभीर—विचार की अनुभूति नहीं होती, बल्कि हास्य की ही अनुभूति होती है। जड़ समुद्र तथा दुष्ट रावण की बातों को :

"काक कहहि कल कंठ कठोरा" के आधार पर आप्त वाक्य नहीं माना जा सकता।

इन उपर्युक्त उद्धरणों से यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि तुलसी के केवल दुष्ट पात्र ही नारी निन्दक हैं, अपितु शिव, कवि, कैकेयी, दशरथ और सामान्य नारियों ने तथा भरत ने भी प्रसंगानुसार नारी स्वभाव के अनिष्ट पक्ष की व्यंजना की है।

तुलसी ने हितोपदेश, महाभारत तथा सत्योपाख्यान आदि ग्रंथों से उक्तियों को परिमार्जित तथा अश्लील अंशों को निकालकर ही हिन्दी में उनका रूपान्तर किया है। अनुसुइया जैसी शीलवतो ऋषि पत्नि ने तो नारी को 'सहज अपावनि' कहा ही है। साथ ही पारवती और राम द्वारा जननी की भांति समादृत शबरी ने भी नारी निन्दा की है। शबरी का कथन दृष्टव्य है :

केहि विधि अस्तुति करहुं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी ।।
अधम ते अधम-अधम अति नारी। तिन्हमहुं मैं मति मंद अधारी ।।

शबरी के इस कथन से यह पता चलता है कि यह मनोवैज्ञानिक आलोचना की दृष्टि से नारी की हीनता ग्रन्थि है। समाजशास्त्र और इतिहास की दृष्टि से शताब्दियों से चली आती हुई मानसिक पराधीनता से युक्त नारी की यह परम्परा रही है। तुलसी के युग में नारी की सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं थी। तुलसी साहित्य का मुख्य उद्देश्य हिन्दुओं को विलासिता की तरफ से हटाकर शौर्य की ओर बढ़ाना तथा रामनाम रूपी रस का पान कराना था। भक्ति का मुख्य तथा अनिवार्य साधन वैराग्य, विषय वितृष्णा है और काम जीव की प्रवलतम सहज वृति है। अतः नारी के अवगुणों के बारम्बार निदर्शन से ही उसके प्रति वैराग्य का उदय संभव था। तुलसी पर केवल इतना ही आक्षेप किया जा सकता है कि उन्होंने अनवरत काल से आती हुई इस परंपरा का थोड़ा बहुत अनुसरण किया। रामभक्ति की ज्ञानाश्रयी शाखा के कबीर आदि कवियों ने जो नारी निन्दा की है उसकी तुलना में तुलसीदास की उक्तियां कोमल हैं और वह नारी के प्रति अनुदार होते हुए भी उदार हैं। एक स्थल पर तो पराधीन नारी के प्रति प्रति भी अपनी सहानुभूति दिखलाई है :

कत विधि सृजी नारी जगमाहीं। पराधीन सपनेहुं सुखनाहीं ।।

मानस के नारी-निन्दा विषयक प्रसंगों को लेकर आलोचकों ने समाज को खूब भड़काया, परन्तु फिर भी यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि मानस की अनुरागी पुरुषों से अधिक स्त्रियां ही हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की एक विदुषी महिला डा० ज्ञानवती त्रिवेदी का शोधग्रन्थ "मानस में नारी और उसका महत्व" इस दृष्टि से अवलोकनीय है।

रामायण और भारत का पारम्परिक रंगमंच

—डा० सुरेश अवस्थी

रामायण का भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया की संस्कृति और सभ्यता में एक बड़ा योगदान है। इसकी परम्पराओं ने इन देशों के लोगों के विश्वासों रीति-रिवाजों, मूल्यों और जीवन-शैलियां को बहुत कुछ प्रभावित किया है। इतना ही नहीं, रामायण के कथानक ने इन देशों की साहित्यिक और ललित कलाओं को भी प्रेरित और समृद्ध किया है। रामायण की जीवन्त परम्पराएं आज भी वर्तमान हैं और हमारे समाज में सौन्दर्य-बोध और सृजनात्मक प्रेरणा का स्रोत बनी हुई हैं।

सदियों से रामायण का कथानक कवियों को सुन्दर और महान काव्यों की रचना के लिए प्रेरणा प्रदान करता रहा है। इस कथानक पर पहला काव्य ग्रन्थ दो हजार वर्ष पूर्व महर्षि वाल्मीकि ने संस्कृत में प्रणीत किया। वाल्मीकि 'रामायण' का साहित्य-जगत में बड़ा आदर है। भारतीय भाषाओं में इस विषय पर जिन विख्यात श्रेष्ठ ग्रन्थों की रचना हुई, उनमें तमिल में 'कम्ब रामायण', बंगला में 'कृत्तिवास रामायण' और हिन्दी में तुलसीदास का 'रामचरितमानस' उल्लेखनीय है। भारतीय भाषाओं में लिखे गए रामायण जनसाधारण के बीच इतने लोकप्रिय हैं है कि वे जनसाधारण के विचारों और व्यवहारों के अभिन्न अंग बन गए हैं।

शताब्दियों से ये ग्रन्थ पारम्परिक नाट्यशाला के लिए उपाख्यानों के भंडार रहे हैं और विभिन्न प्रकार की रंगशालाएं इनसे प्रचुर सामग्री प्राप्त करती रही हैं। इन उपाख्यानों को देश भर में विभिन्न शैलियों में नृत्य और गान के माध्यम से प्रस्तुत करके लोगों का सुरुचिपूर्ण मनोरंजन किया जाता रहा है। रामायण की परम्पराओं ने चित्रकारों को भी प्रेरित किया है और विभिन्न क्षेत्रों में चित्रकला की विभिन्न शैलियों में रामायण के कथानक को चित्रित किया गया है। विभिन्न क्षेत्रों के लोक-साहित्य को भी इसके कथानक ने समृद्ध बनाया है। लोक कलाकारों और दस्तकारों ने रामायण के उपाख्यानों और श्रेष्ठ नायकों को कला के विभिन्न माध्यमों से चित्रित किया है।

नाट्य कलाकारों के लिए राम का कथानक शताब्दियों से आदर्श विषय रहा है। देश भर में विभिन्न नृत्य एवं नाट्य शैलियों के माध्यम से यह व्यापक रूप से प्रदर्शित किया गया है। उत्तर भारत में इस कथानक का मुख्य नाट्य रूप रामलीला है और कथोपकथन के लिए रामचरितमानस को आधार बनाया जाता है।

विभिन्न शैली में

विभिन्न क्षेत्रों में रामलीला की विभिन्न शैलियां प्रचलित हैं और विषय तथा संगीत सम्बन्धी अपनी-अपनी निजी विशेषताएं हैं। किन्हीं स्थानों पर रामलीला नृत्य-नाटिका के रूप में, कहीं पर नाटक तथा कहीं पर सवारियों के रूप में प्रस्तुत की जाती है। रामलीला के अन्तर्गत

कुछ समारोह व संस्कार ऐसे भी होते हैं, जिनमें दर्शक भी सक्रिय भाग लेते हैं।

उत्तर भारत की रामलीला के अलावा रामचरित को पारम्परिक रंगमंच के विविध रूपों में प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरण के लिए, केरल का कुतियत्तम जो संस्कृत रंगमंच का एकमात्र जीवित रूप है, कथकली जो केरल की शास्त्रीय नृत्य-नाटिका है; यक्षगान, जो मैसूर का अत्यन्त विकसित और शैलीबद्ध नाट्य-गीत है; अंकीय नट, जो असम में वैष्णव मठों में प्रदर्शित किया जाने वाला गीतात्मक नाटक है और पश्चिम बंगाल का छो नृत्य उल्लेखनीय है। उड़ीसा व पश्चिम बंगाल में यात्रा, आंध्र प्रदेश में वीधी नाटकम और मध्य प्रदेश में माच नामक लोक-नाट्यों में भी रामचरित प्रदर्शित किया जाता है। कठपुतली नृत्य की विभिन्न शैलियों में भी रामचरित मुख्य कथानक रहता है। इस विधा में ईस्वीपूर्व की शताब्दियों पुरानी परम्परा की झांकी मिलती है।

भारत में छाया नाटक की शक्तिशाली परम्परा आंध्र प्रदेश की है। इसका प्रमुख कार्य-क्षेत्र आंध्र प्रदेश का तटवर्ती जिला गोदावरी है, जहां से यह विद्या इंडोनेशिया पहुंची बताई जाती है। आंध्र प्रदेश के अलावा छाया नाटक उड़ीसा, मैसूर और केरल में भी प्रचलित है। पश्चिम बंगाल, केरल, तमिलनाडु और मैसूर में विभिन्न प्रकार के अन्य कठपुतली नृत्यों के माध्यम से भी रामचरित प्रस्तुत किया जाता है।

प्रस्तुतीकरण की शैलियों, संगीत, नृत्य, कथावस्तु और नाटकीय तत्वों की दृष्टि से रामायण नाटक पारम्परिक नाट्यशाला का प्रतिनिधित्व करता है। पारम्परिक संस्कृति, जनता के विश्वासों और आदर्शों, चरित्र और रीति-रिवाजों तथा कला एवं शिल्पों के महत्वपूर्ण तत्व इसमें सन्निहित हैं।

सम्पूर्ण पाठ्यशाला

रामायण में साक्षरता और कला के विविध पक्षों का सुन्दर समन्वय है। यह अपने आप में सम्पूर्ण पाठ्यशाला है। इसके वर्णनों में सिद्ध साज सज्जा और रूप-विधान के संकेत भरे पड़े हैं, जो कि प्रदर्शनमें सहायक होते हैं। अभिनेताओं को रूप-सज्जा, उनके कथोपकथन और हावभावों से शैलियां और परम्पराएं स्पष्ट होती हैं।

कथकली और यक्षगान में नृत्यों में प्रयोग किए जाने वाले विलक्षण छद्म आवरण, छो नृत्य की नाजुक और रंगीली वस्त्र-सज्जा और कथकली की अत्यन्त परिष्कृत रूप-सज्जा लीलारूपकों का प्रभावी विधान है। रावण, हनुमान और गरुड़ जैसे पात्रों की रूप-सज्जा और मुखावरणों का ने शिल्पियों का ध्यान आकर्षित किया है और उन्होंने इनके अनुरूप विभिन्न प्रकार के परिधान परिकल्पित किए हैं, जो इन पात्रों की भूमिका स्पष्ट करने में बहुत प्रभावी सिद्ध हुए हैं। वाराणसी के निकट रामनगर की रामलीला में रावण को पहनाया जाने वाला जरी की कढ़ाईवाला मुखौटा कला का एक उत्कृष्ट नमूना है। असम में अंकीय नट में गरुड़ को पहनाया जाने वाला शरीर के आकार का छद्म आवरण और उड़ीसा में शाही यात्रा में रावण को पहनाया जाने वाला मुखौटा अत्यन्त नाटकीय व प्रभावोत्पादक हैं। पश्चिम बंगाल के छो नृत्य के मुखौटों में प्राचीनता के दर्शन होते हैं।

मुख्य विशेषताएं

रूप-सज्जा में प्रतीकात्मक रंगों और अप्रत्यक्ष डिजाइनों के प्रयोग का उद्देश्य पात्रों की मुखाकृतियों और उनकी विशेषताओं को प्रभावोत्पादक बनाना है। लीलाओं और कठपुतली प्रदर्शनों में भी रूपसज्जा में प्रतीकात्मक रंगों की योजना लगभग वैसी ही रहती है। उदाहरणार्थ, यक्षगान, कठपुतलियों की सजावट में वैसी ही साजसज्जा की जाती है, जैसी कि सजीव यक्षगान नाटक के पात्रों की होती है।

देश के विभिन्न भागों में रामायण नाटक की प्रचलित विविध शैलियों की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

कविता, संगीत, नृत्य और प्रहसन का प्रयोग, महाकाव्य और गीतीकाव्य का परस्पर मिश्रण, वर्णनात्मक और नाटकीय कथा सामग्री का मिश्रण, अभिनेता के हाव-भाव स्पष्ट करने की परिष्कृत शैली, भाषणों की परम्पराएं, कथोपकथन के विविध ढंग, सामूहिक गीतों का प्रयोग और सूत्रधार, विस्तृत वस्त्राभूषण, प्रतीकात्म मुखसज्जा, विलक्षण मुखावरण और मुकुट, काल और स्थान की एकता से स्वतन्त्रता और विविध नाट्य विधान।

रामचरितमानस : उद्देश्य और उपलब्धि

—डा० सत्यनारायण शर्मा

कोई भी कवि किसी-न-किसी उद्देश्य से ही किसी भी ग्रन्थ का प्रणयन करता है। उदाहरणार्थ श्रीमद्भगवतगीता का अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे बिना नहीं रहते कि गीताकार भक्ति, ज्ञान एवं दर्शन का विवेचन करते हुए भी अपने प्रधान उद्देश्य कर्मयोग को कहीं भी विस्मृत नहीं करते। जहां गीता में केवल अर्जुन के मोह की ही चर्चा है और उसके निवारण कर्त्ता केवल भगवान् श्री कृष्ण ही हैं, वहां 'मानस' में भरद्वाज, पार्वती एवं गरुड़, तीन मोहग्रस्त व्यक्तियों के क्रमशः याज्ञवलक्य, शिव एवं काकभुशुण्डि तीन महान रामभक्त समाधान कर्त्ता हैं। यथार्थतः जहां गीता का मोह कर्म-अकर्म का मोह है, वहां मानस का मोह समग्र सृष्टि के मूलतत्व भगवान राम के स्वरूप का है :

"राम कवन प्रभु पूछऊं तोंही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही।"

इससे स्पष्ट है कि गीता वर्णित मोह से मानस वर्णित मोह अधिक प्रगाढ़, व्यापक और गम्भीर है। गोस्वामी तुलसीदास के समय से पूर्व एवं उनके समय में भी जो निर्गुणवादी सन्तमत का प्रचार था या उसके अतिरिक्त जो अन्यान्य कल्पित पंथ विद्यमान थे उनके आचार्यों ने "राम केवल निर्गुण हैं, सगुण नहीं" या "राम का अस्तित्व ही नहीं है" इस प्रकार का मोह व्यापक रूप में फैला रहा था। वस्तुतः रामचरितमानस इसी घोर एवं व्यापक मोह के निराकरण के लिए लिखा गया था।

जिस समय तुलसी का आविर्भाव हुआ, उस समय समाज के चारों ओर आडम्बरों का प्रभाव था। भक्ति, ज्ञान, योग, कर्म आदि एक-दूसरे से बहुत दूर पड़ गए थे। तुलसी ने 'मानस' में सभी प्रकार के आडम्बरों को छोड़कर भगवद्भक्ति की प्राप्ति के लिए मन, वचन और कर्म की निर्मलता तथा सरलता पर बल दिया। साथ ही उन्होंने भक्ति में ज्ञान, योग, कर्म आदि का समुचित समन्वय भी किया। सन्त-समाज रूपी प्रयाग के वर्णन में भक्ति की गंगा, ज्ञान की सरस्वती और कर्म की यमुना का समन्वित रूप तुलसी की भक्ति, ज्ञान एवं कर्मविषयक समन्वयवादिता को ही प्रकट करता है। मानस के लिए शिव, सती, शरभंग, शबरी की कथा के प्रसंग में योग समन्वित भक्ति का रूप स्पष्टतया परिलक्षित होता है। भरत और जनक के जीवन में राम के प्रति प्रगाढ़ प्रेम और सामाजिक कर्तव्य दोनों का साथ-साथ निर्वाह करके तुलसी ने भक्ति के साथ-साथ कर्म का भी सशक्त शब्दों में समर्थन किया है। इतना ही नहीं, तत्कालीन साम्प्रदायिक संघर्ष को समूल नष्ट करने के लिए उन्होंने भारत के सम्मान्य इष्टदेवों में भी इस कौशल के साथ सामंजस्य स्थापित किया है कि किसी भी सम्प्रदाय के इष्टदेव के प्रति विद्वेषात्मक भाव उठने ही नहीं पाता।

तुलसी जहां एक ओर 'मानस' की रचना का कारण 'स्वान्तः सुखाय' घोषित करते हैं वहीं दूसरी ओर अपने 'मानस' से जगत् की

रक्षा की कामना भी रखते हैं। अतः इनका 'मानस' व्यक्तिगत-साधना एवं व्यक्तिमात्र के कल्याण के लिए ही नहीं है, प्रत्युत लोक-साधना एवं लोक कल्याण के लिए भी है। लोक कल्याण के लिए आत्मबलिदान करने वाले को वे स्तुत्य मानते हैं।

वस्तुतः जिस भक्ति से संसार रक्षा होती है, जिससे समाज चलता है, वही वास्तविक भक्ति है। तुलसी के 'मानस' में समस्त सांसारिक मर्यादाओं का आदर्श अक्षुण्ण है और उसमें साधुमत एवं लोकमत दोनों का सन्तुलित समन्वय है। चित्रकूट में वशिष्ठ एवं निषादराज का मिलन-प्रकरण इसका सुन्दरतम उदाहरण है।

'मानस' के प्रचार-प्रसार के साथ ही साथ सब प्रकार की धार्मिक संकीर्णताओं और भेद-भावों की जड़ें हिल गईं। हाट-बाट, गांव, नगर और जंगल-पहाड़ सब राम नाम से गूंज गए। राम अयोध्या मात्र के राजा राम न रहकर सम्पूर्ण देश के भगवान राम बन गए और प्रत्येक वर में राम की, वधू में सीता की, पिता में दशरथ की तथा माता में कौशल्या, कैकेयी एवं सुमित्रा की मूर्तियां आंकी जाने लगीं। जनता के हृदय पर 'रामचरितमानस' ने इतना गहरा प्रभाव डाला कि राम का नाम एक-एक व्यक्ति के ध्यान, धारणा और जप का साधन बन गया।

उत्तर भारत के गांवों तक में ऐसे बहुत से स्त्री-पुरुष मिलेंगे जो 'मानस' का पाठ किए बिना अन्न-जल नहीं ग्रहण करते। अब तो देश में जहां-तहां राष्ट्रीय संकटों के निवारण के लिए भी मानस पाठ, मानस महा-यज्ञ इत्यादि किए जाने लगे हैं। कहीं-कहीं ग्रामीण लोग 'मानस' की पंक्तियों को अपने जातीय गीतों में मिलाकर जमात बांध कर गाते और नाचते हैं। बिरहा गायक तो प्रायः समग्र 'मानस' को बिरहा का रूप दे देते हैं और प्रेमविह्वल कंठ से राम भक्ति की प्रेरणा प्रदान करते हुए उनका गायन करते हैं। मानस-गान की यह प्रणाली भारतीय ग्रामीण जीवन को सरस एवं आह्लादपूर्ण बनाए रहती है।

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का श्रीगणेश करते हुए महात्मा गांधी गीता के साथ-साथ 'मानस' की भी सदैव दुहाई देते रहते थे। तुलसी ने 'मानस' के लंकाकांड में जिस धर्म-रथ का उल्लेख किया है, उसकी समता महात्मा गांधी के जीवन से सहज ही की जा सकती है। उन्होंने भी उसी रथ पर बैठकर भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में विजय प्राप्त की थी। इस तरह 'मानस' एक महान क्रांतिकारी ग्रन्थ है, जो पददलित राष्ट्र को अपने ऐक्य, साहस और सदाचार के बल पर अत्याचारियों का विध्वंस कर जाग्रत होने की प्रबल प्रेरणा प्रदान करता है।

जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कवि करहीं॥

मानस की मनोवैज्ञानिक गहराइयां

—डा० कमलाकान्त पाठक

तुलसीदास भक्ति-कवि हैं, उन्होंने सर्वत्र नीति और मर्यादा का लोकादर्श उपस्थित किया है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद में उनकी एकान्त निष्ठा नहीं रहीं। अपने पात्रों और उनके कार्य-कलाप का अथवा कथाप्रसंगों का स्वाभाविक वर्णन करने के लिये ही उन्होंने मनोविज्ञान का सहारा लिया। भाव व्यंजना का मूल आधार मनोविज्ञान है। अतः प्रबंध-रचना में उसकी अवहेलना संभव नहीं है।

तुलसीदास ने भारतीय दर्शन ग्रंथों के मन विषयक विचारों को ग्रहण किया है और मानव स्वभाव के अपने निरीक्षण को प्रमाव माना है। उन्होंने मन की यांत्रिक प्रक्रिया या व्यक्ति-मन की विचित्रता को कार्य-वस्तु के रूप में स्वीकार नहीं किया। वे 'मानस गुनी'' हैं, मनोवैज्ञानिक नहीं। उन्हें मनोविश्लेषण में प्रवृत्त समझना उनका उपहास करना है। मन की जिन मूल प्रवृत्तियों का निर्देश आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने किया है, उनकी समुचित अभिव्यक्ति 'मानस' में पायी जाती है।

मानस विवेक की सृष्टि है, विकृत या ग्रंथि-ग्रस्त मन की रचना कार्य नहीं। अस मानस-मानस-चखचाही।

भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही।'

रामचरित के मानस में अवगाहन करने से कवि की बुद्धि निर्मल हो गई। इसी से उसने न प्राकृत जन का गुणगान किया, न विषय कथा का वर्णन। मानस कवि के चेतन मन की रचना है, कुंठाग्रस्त मन की नहीं। मानस-मन की तुलसीदास की अभिज्ञता बहुत गहरी थी उन्होंने एषणात्रय का निर्देश किया हैं, जो मन की विविध प्रवृत्तियों की उत्स है। सभी मानस-रोग मोह जन्य और अज्ञान के प्रतिफल हैं। हर संसारी व्यक्ति का मन रोगग्रस्त माना गया है।

तुलसीदास ने मनोविकारों की जो छांनवीन की है, उसको धर्म और दर्शन के सिद्धान्तों से पुष्टि हो जाती है। उसको मनोवैज्ञानिकता भी अतर्क्य है। यहां तुलसीदास ने आसक्ति का निषेध किया है, प्रवृत्ति का नहीं। वे मानसिक प्रवृत्तियों को स्वाभाविक मानते हैं।

तुलसीदास ने कामवृत्ति और अहंवृत्ति को मूल प्रवृत्तियों के रूप में ग्रहण किया है और मानस की कथा का तानाबाना बुना है। ये सर्वत्र सदसद् विवेक लिए हुए है और उन्होंने मानसिक असंतुलन को हेय माना है। वे मन के उदात्त स्वरूप के प्रति आकर्षित हैं। उन्हें मन की जटिलता और उसकी सूक्ष्मता की प्रमाणिक जानकारी है। मानस मनोविज्ञानिक काव्य नहीं है। यह मनोवृत्तियों को यथार्थ रूप में चित्रित करने वाला काव्य है। तुलसी ने व्यापक जीवन और मन की सूक्ष्म गतियों को एक साथ अभिव्यक्त किया है। वे 'मानस गुनी' हैं जिन्हें मानसिक रोगों का उपचार अभीष्ठ है, उनका संवर्धन नहीं।

तुलसीदास आधुनिक संदर्भ में

—डा० दशरथ ओझा

स्थूल रूप से विचार करने पर अध्यात्मवादी तुलसीदास आज के भौतिकतावादी युग में सर्वथा अमान्य प्रतीत होते हैं। पर यदि तुलसीदास के अध्यात्मवाद को गौण मानकर उनके समाजवादी सिद्धान्तों को आधार बनाकर आधुनिक समस्याओं का सुलझाव खोजें तो अपने और महाकवि के साथ न्याय कर पायेंगे। देखना यह है कि तुलसीदास ने अपने ग्रंथों में समाज की जिस स्थिति का चित्रण किया है वह आज की परिस्थिति से कितना साम्य और वैषम्य रखती है। तुलसीदास ने इतिहास-पुराण के आलोक में अपने समाज की दुर्दशा देखकर भावी का भी अनुमान उसी प्रकार लगा लिया था जिस प्रकार कृष्ण ने अपने यदुवंश का भविष्य देख लिया था, बुद्ध ने भिक्षुणियों के प्रवेश से बौद्ध संघ का और गांधीजी ने देश का भविष्य भांप लिया था। उन्होंने समाज का चित्रण इस प्रकार किया था :

शिक्षक (ब्राह्मण) वेद (ज्ञान) को बेचेंगे, राजा प्रजा का भक्षण करेंगे, कर्त्तव्य शास्त्र का अनुशासन कोई नहीं मानेगा, सब लोग मनमाना काम करेंगे, बढ़-बढ़कर बोलकर अपनी योग्यता का डंका बजाने वाला विद्वान माना जायगा, ढोंगी और पाखंडी संत समझे जायेंगे, किसी प्रकार परधन अपहरण करने वाला ही चतुर और प्रवीण समझा जायगा, वही बुद्धिमान माना जायगा जो परम्परागत सदाचार धर्म का त्याग करेगा और लबार वक्ता समझा जायगा। यह तो हुई देश और समाज की स्थिति।

तुलसीदास पारिवारिक स्थिति का वर्णन जिस रूप में करते हैं उसका प्रत्यक्ष दर्शन आज के व्यक्तिगत जीवन में दिखाई पड़ता है। वह लिखते हैं :

सब नर काम-लोभ-रत क्रोधी। देव-विप्र श्रुति संत विरोधी।
गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी।

आज हमारे देश का समूचा कथा साहित्य इन पंक्तियों का समर्थन करता है। तुलसीदास ने गुरू-शिष्य की दशा का जैसा शोचनीय रूप सामने रखा है वैसा आज प्रत्यक्ष देखने में आता है :

गुर-सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनई एक नहिं देखा।।
हरइ शिष्य धन सोक न हरई।

माता-पिता का सम्बन्ध पुत्र के साथ और पुत्र का सम्बन्ध माता-पिता के साथ कितना विकृत हो गया है। उसका कारण अभिभावकों का धन प्रेम है :

मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धरम सिखावहिं।

सम्मिलित परिवार की परम्परा उसी प्रकार टूटती दिखाई गई है जिस प्रकार आजकल देखने में आती है। धन ही कुलीनता और सम्मान का मापदंड होने से आचरण और सामाजिक धर्म की उपेक्षा होने लगी है और धनी बनने के उपाय ही सद्धर्म बन गए हैं—"धनवंतु कुलीन।"

चरित्र की मलिनता को रजत की उज्ज्वलता धो डालती है। शरीर को सुख-भोग में डुबाना और सर्वत्र दूसरे की निन्दा करना युगधर्म बन गया है। धूर्त्तता के द्वारा दूसरों को ठगने की भावना सबसे अधिक प्रबल बन गई है। तुलसीदास लिखते हैं :

तनु पोषक नारि नरा सगरे। पर निंदक जे जग मो बगरे॥

तुलसीदास का मत है कि जब कोई देश और समाज अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं करता तो प्रकृति का कोप होता है और तब

देव न बरषहिं धरनीं बए न जामहिं धान॥
कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै।

तुलसी के समय में समाज को सन्मार्ग पर ले जाने वाले साधु संत भी पथ-भ्रष्ठ हो गए थे। वे मठाधीश बन धन संचय करके विषयासक्त बनने लगे। गृहस्थ तो निर्धन हो गए किन्तु तथाकथित तपसी धनी बन गए हैं।

जब देश में अवांछनीय व्यक्तियों के पास धन आ जाता है तो समाज में शोषण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। कुलवंत सुशील स्त्रियों को धनशाली व्यक्ति घर से निकालकर अपनी दुर्दशा का बिना ध्यान रखे हुए पुंश्चला रखैलों को समादृत करते हैं : कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती॥

उपर्युक्त विवेचना से ज्ञात होता है कि तुलसीदास ने कलि के माध्यम से जिस समाज का चित्रण किया है वह उनके समय में चाहे उतना विकृत न रहा हो पर आज तो उसका तद्वत् रूप मिलता है।

कर्तव्य पालन

तुलसीदास केवल निदान करके रोग को असाध्य कहकर छोड़ देने वाले कवि नहीं। वे तो महाकवि हैं। अतः उन्होंने समाज कल्याण का उपाय भी बताया है। उनका कथन है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति का समाज के प्रति दायित्व है। यदि वह अधिकार के लिए संघर्ष न करके कर्त्तव्य (धर्म) का पालन करता है तो न केवल व्यक्ति का ही अपितु समष्टि का कल्याण होता है।

तुलसीदास ने अध्यात्म के अतिरिक्त समाज के विभिन्न वर्गों और प्रत्येक प्राणी के पारस्परिक सम्बन्धों पर बहुत ही बल दिया है। जिस प्रकार समाज निर्माण के लिए प्रत्येक वर्ग या वर्ण का सामूहिक कर्त्तव्य नियत है उसी प्रकार प्रत्येक वर्ग की इकाई (परिवार) के भी कर्त्तव्य नियत हों।

तुलसीदास ने सभी प्रकार के सन्तापों को दृष्टि के सामने रखा है। आधि दैहिक और आधि भौतिक सन्तापों का शमन रामभजन से ही हो सकता है। तुलसीदास शरीर, मन, बुद्धि, चित्त आदि को पृथक करके न निदान करते और न उपचार सोचते। जिस प्रकार व्यक्ति, देह, मन, बुद्धि, चित्त आदि के समवाय का नाम है उसी प्रकार समष्टि वर्ग संघात का नाम है। इसी वर्ग का नाम तुलसी वर्ण देते हैं। "वर्ण्यंते अनेन इति वर्णः।" जिस समुदाय के द्वारा कोई व्यक्ति अपना व्यवसाय चुनता है वही उसका वर्ण है। व्यवसाय एक बार चुन लेने के बाद निष्ठापूर्वक उसके कर्त्तव्य और दायित्व को निभाना वर्णधर्म है। तुलसीदास इसीलिए अपने-अपने कर्त्तव्य के पालन पर बड़ा बल देते हैं।

भावना के निर्माण में समाज का प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है पर तदनुरूप आचरण करने में वह समाज से नियंत्रित है। तुलसीदास बार-बार आचरण की उच्चता पर बल देते हैं। समाज में उच्च पद धन से नहीं अपितु आचरण से मिलता है।

तुलसीदास मानव की सर्वांगीण उन्नति को एक कसौटी प्रस्तुत करते हैं जो प्रत्येक देश, प्रत्येक काल और प्रत्येक राजतंत्र के लिए उपादेय है। वह कहते हैं कि राम उसीको अपना प्रिय मानते हैं जिसको शत्रु-मित्र सभी अपना प्रिय मानते हैं। किसी व्यक्ति का सबको अपना प्रिय समझना ही पर्याप्त नहीं उसे जब सभी अपना प्रिय मानेंगे तभी वह राम का प्यारा बन सकता है। कोई भी व्यक्ति अपने आचरण के बल पर ही सबका प्रिय बन सकता है। इसीलिए तुलसीदास कहते हैं :

"राम सोहाते तोहि जौ तू सबहिं सुहातो।"

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आज का अन्नाभाव, छात्र-संदर्भ भ्रष्टाचार, पारिवारिक संघर्ष, वर्ग संघर्ष, विषमता और विद्वेष आदि सभी समस्याओं के लिए रामचरितमानस में सुलझाव मिलता है। अतः रामचरितमानस तथा तुलसीदास की आधुनिक युग में निश्चय ही उपयोगिता है।

दक्षिण पूर्व एशिया में 'रामचरितमानस'

—पं० दुर्गाप्रसाद शर्मा

महा कवि गोस्वामी तुलसीदास रचित 'रामचरितमानस' को भारत का राष्ट्रग्रंथ घोषित करने का प्रस्ताव जब आया तब मन में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ था कि 'विश्व-ग्रंथ' को 'राष्ट्रग्रंथ' घोषित करने का प्रस्ताव क्यों ? 'रामचरितमानस' वस्तुतः विश्व-ग्रंथ है। आयुर्वेद के प्रचार-प्रसार के लिए विश्व के अनेक देशों की यात्रा के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि 'रामचरितमानस' का समादर समस्त विश्व में हैं। यह सूचना मैंने विश्व के प्रायः प्रत्येक देश से प्राप्त की है। 'मानस' का विशेष प्रचार उन देशों में है जहां भारतीय जाकर बसे हैं। दक्षिण अफ्रीका के निकट स्थित मारिशस द्वीप के घर-घर में 'रामचरितमानस' का प्रचार-प्रसार तथा सम्मान है। वहां पता चला कि अफ्रीका के व्यापक क्षेत्रों में, किन्तु दक्षिण अफ्रीका में विशेष रूप से, 'मानस' का प्रचार-प्रसार तथा आदर है। भारतीय और विशेषतः हिन्दी भाषी अथवा हिन्दीज्ञ भारतीय जहां भी हों वहां 'मानस' उनका प्राण-ग्रंथ बना हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि 'मानस' भारतीय संस्कृति का प्राण-ग्रंथ, आत्मा-ग्रंथ और सार-ग्रंथ है।

यहां मैं विशेषतः दक्षिण पूर्व एशिया में 'मानस' के प्रचार-प्रसार तथा समादर की चर्चा करूंगा। बर्मा, थाईलैण्ड, श्रीलंका, मलयेशिया, हिन्देशिया, फिलिपिन आदि में मैंने 'रामचरितमानस' का व्यापक प्रचार पाया है। श्रीलंका के सिंहली-भाषी नागरिकों को हिन्दी का ज्ञान भले ही न हो, वहां 'रामचरितमानस' को लोग जानते हैं और इसका समादर भी करते हैं। वहां के बौद्ध नागरिक 'मानस' को बौद्धधर्म के महान् त्रिपिटक से कम महत्त्व नहीं देते। श्रीलंका हिन्दी-सम्मेलन ने तो 'मानस' का पर्याप्त प्रचार किया है। इस संस्था के सदस्य सिंहलीभाषी भाई-बहन हैं, परन्तु हिन्दी तथा 'मानस' के बड़े प्रेमी हैं। इस संस्था ने भी 'मानस' के चतुश्शती-समारोह का कार्यक्रम बनाया। जिस प्रकार हिन्दी-भाषी मारिशस में 'मानस' का समारोह आयोजन हुआ, उसी प्रकार दक्षिण पूर्व एशिया के भी अनेक देशों में हुआ है।

दक्षिण पूर्व एशिया की यात्रा के क्रम में कई बौद्ध मित्रों ने 'रामचरितमानस' की व्यापक महत्ता पर बल देते हुए कहा कि 'मानस' में त्रिपिटक भी है, ऐसा कहा जा सकता है। साथ ही उन्होंने स्वीकार किया कि त्रिपिटक में 'मानस' भी है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। विभिन्न धर्मावलम्बिओं के द्वारा 'मानस' की महत्ता इसलिए स्वीकार की जाती है कि 'मानस' किसी धर्म विशेष अथवा सम्प्रदाय विशेष का ग्रंथ नहीं, बल्कि मानव-धर्म का ग्रंथ है। यह कोई संकीर्ण अथवा सीमित ग्रंथ नहीं है।

हिन्द महासागर के विशाल अंचल में जो भी देश अथवा द्वीप हैं उनमें 'मानस' का प्रचार-प्रसार अथवा समादर सुनिश्चित रूप से है। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्द महासागर और हिन्दी भाषा का आन्तरिक एवं अटूट सम्बन्ध है। हिन्दी का अद्वितीय गौरव-ग्रंथ होने के कारण 'मानस' हिन्द महासागर के वक्षस्थल पर अंकित हो गया है। प्रशान्त महासागर के क्षेत्र में भी 'मानस' का अच्छा समादर है।

संस्कृत और सन्त तुलसीदास

—डा० वागीश शास्त्री

सन्त तुलसीदास को जब कवित्व-स्फुरण हुआ, तब उन्होंने ग्रन्थ-रचना की पूर्व परम्परा से प्रभावित होकर संस्कृत में ही रामचरित लिखना प्रारम्भ किया। किन्तु प्रसिद्धि है कि दिन में जितने पद्यों की रचना करते, रात्रि में वे सब लुप्त हो जाते। आठवें दिन भगवान् शंकर ने सन्त को आदेश दिया कि तुम अपनी भाषा में काव्य-रचना करो। यह तो हुई किंवदन्ती। वस्तुतः लोकमानस पर प्रभाव डालने के लिए तुलसीदासजी निर्झरिणी की भांति कलकल करती हुई स्वाभाविक गति-युक्त भाषा में काव्य-रचना करना चाहते थे। साथ ही वे संस्कृत में ग्रन्थ रचने की मान्यता का भी निर्वाह करना चाहते थे। किन्तु भाषा की स्वाभाविक कवित्व निर्झरिणी के लिए संस्कृत व्याकरणादि किसी नियम के बन्धन से क्या प्रयोजन? कवि के मानस से रस-निःस्यन्द उमड़ पड़ा। उन्होंने अपने प्रायः सभी ग्रन्थों में देवादि-स्तुतियों को इतना संस्कृतशब्द बहुल बना दिया कि अधिकांश जनों को उनके संस्कृतमय होने का भ्रम हो गया और आज भी है। वस्तुतः कहीं-कहीं स्वाभाविक प्रवाह में अनायास ही व्याकरण सम्मत संस्कृत पद्यों की अनूठी रचना बन गई है। उन्होंने ग्रन्थ के आदि और अन्त में स्वयं स्वीकार किया है कि रघुनाथगाथा रूप रामचरितमानस को तुलसीदास भाषा में निबद्ध करता है :

भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति।

अन्त की पुष्पिका में लिखा है :

भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्।

सन्त तुलसीदास ने संस्कृतशब्दबहुल स्तुतियों की रचना पंडितवर्ग के आकर्षण के लिए नहीं की थी। किन्तु उस समय के लोकमानस में लेशतः कृतपद दुरूह वैदिक और लौकिक संस्कृतमय आध्यात्मिक व्यवहारों पर रामचरित को प्रतिष्ठित करना था। लोकमंगल-कामना से परिपूर्ण कवि मानस से स्वाभाविक अमृतनिःस्यन्द बह चला। प्रवाह में संस्कृतशब्दबहुल पद्य-रचना होती चली गई। उनमें संस्कृतशब्दावली और लोकभाषा शैली का तिलतण्डुलवत् सांकर्य हुआ है। सामान्य जन यदि उन्हें संस्कृतमय समझ बैठते हैं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। संस्कृत, प्राकृत अथवा संस्कृत तथा प्रचलित देशभाषा अथवा कई भाषाओं के मिश्रण से बने पद्यों को गाथा कहा जाता है। सन्त तुलसीदास के संस्कृतमय जैसे लगने वाले पद्यों की भाषा गाथा है।

सन्त तुलसी का रामचरितमानस चौपाइयों, दोहों और सोरठों में है। गाथा में चौपाई का उदाहरण देखें :

शीलेनानतिसदृशु महर्षे। सोचेही जगु विविधकिलेशैः॥

प्रज्ञाया परिचरि कुशल त्वं। ज्ञानं ते पृथु विपुलमनन्तं॥

तुलसी की संस्कृत जैसी लगने वाली भाषा के अतिरिक्त दोहा-चौपाइयों की भाषा पर भी गाथा का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। गाथा में प्राय: पद के अन्त में कभी-कभी इकार अथवा उकार देखा जाता है। पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, बंगला तथा तुलसी की भाषा में इनका उत्तरोत्तर आधिक्य है। मुझे ज्ञात हुआ कि कुछ वर्ष पूर्व कुछ हिन्दी के विद्वान तुलसी की भाषा में पद के अन्त में प्रयुक्त इन इकार या उकारों को बहिष्कृत करना चाहते थे।

सन्त तुलसी के संस्कृतबहुल पद्यों को देखकर अधिकांश विद्वान् उन्हें संस्कृत पद्य ही मानते रहे हैं।

लोकसंग्रही सन्त प्रवाहयुक्त भाषा को पेंचदार बनाना ठीक नहीं समझते। अत: वे लोकप्रसिद्ध पदों को ही बिना तोड़े-मरोड़े रख देते हैं। उत्तरकाण्ड के प्रथम स्तुतिपद्य 'केकीकण्ठाभनीलम्' में तुलसी ने बिना तोड़े-मरोड़े ही 'केकी' शब्द का प्रयोग किया है। 'केका' मयूरवाणी को कहते हैं। जिसका 'केका' हो वह केकी मयूर होगा। यह शब्द मूलतः 'केकिन्' है। कर्ता के एकवचन में 'केकी' होता है और यही रूप लोक-भाषा में प्रसिद्ध है। जैसे—घन से घनिन्-घनी; मान से मानिन्-मानी और स्त्रीलिंग में मानिनी। संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार इस प्रकार के पद का समास होने पर अन्तिम 'न्' लुप्त हो जाता है। अत: समास में ह्रस्व इकारान्त 'केकि-कण्ठाभनीलम्' ऐसा प्रयोग होना चाहिए था। पर ऊपर कहा जा चुका है कि तुलसी ने अपने ग्रन्थ की रचना संस्कृत में नहीं की। ऐसे वैयाकरणों को महाकाव्य में पदे-पदे लोक-प्रयोग, लोक-विज्ञान, अभिधान और लक्ष्यैकचक्षुष्क आदि स्थलों पर ध्यान देना चाहिए। सन्त तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त शब्द की छानबीन किए बिना पाणिनीय सूत्र रूपी बसूले से शब्द का छीलना-छालना लोकप्रयोग की अवहेलना करना है। लोकसंग्रही तुलसीदास के मर्म को समझने का प्रयास अपेक्षित है। 'केकी' शब्द रखने का उनका अभिप्राय उनके कण्ठ की श्याम आभा के समान भगवान् राम की देहाभा बताना भर है। स्वर से भी तात्पर्य हो सकता है।

स्तुतियां गाथा के अनुसार लिखी गयी हैं। इनकी भाषा स्वतन्त्र होने के कारण संस्कृत व्याकरण का कोई प्रतिबन्ध स्वीकार्य नहीं।

वस्तुत: जिस प्रकार सन्त तुलसीदास ने नानापुराणनिगमागम सम्मतं तथा 'अन्यतोऽपि' मत लेकर रामचरितमानस में मतादि का समन्वय किया है, उसी प्रकार इसमें भाषाओं और बोलियों का समन्वय भी प्रशंसनीय है। इस ग्रन्थ में संस्कृत और लोकभाषा का पर्याप्त समन्वय किया गया है। यहां तक कि समन्वयवादी तुलसी ने 'निरीक्ष' के अपभ्रंश निरख में संस्कृत का प्रत्यय लगाकर 'निरखन्ति' प्रयोग किया है:

कृतकृत्य विभो सब वानर ए।
निरखन्ति तवानन सादर ए॥

आनन्द कानने ह्यस्मिञ्जंगमस्तुलसी तरुः।
कविता मञ्जरी भाति राम भ्रमर भूषिता॥

—मधुसूदन सरस्वती

बालमीकि रामायण और मानस

—रमेशचन्द्र शर्मा

श्रीरामचरितमानस भारतीय वांग्मय का महानतम ग्रन्थ है। मानस में श्रीराम कथा के अनेक स्रोत बताए गए हैं। मानस के प्रणयन में लोक कथाओं और परम्पराओं को भी स्थान मिला है। जहां तक पूर्व साहित्य का सम्बन्ध है, उसके प्रति तुलसीदासजी ने मंगलाचरण में ही अपनी श्रद्धा अभिव्यक्त करते हुए वेद, पुराण, शास्त्र तथा अन्य स्रोतों की सामान्य चर्चा और रामायण का विशेष रूप से उल्लेख किया है। निश्चय ही इसका अभिप्राय आदि कवि बालमीकि के ग्रन्थ से है। अतः इसमें सन्देह नहीं कि मानस का भूल आधार रामायण है।

राम कथा का प्रवाह रामायण और मानस में प्रायः समान है और श्री राम दोनों ही महाकाव्यों के प्रधान नायक हैं। किन्तु इतनी समानता होने पर भी महर्षि बालमीकि और गौस्वामी जी की विचार-धारा में पर्याप्त अन्तर है। यही नहीं कथा प्रसंगों में भी कहीं-कहीं विरोध है। इस अन्तर का एक कारण तो यह है कि रामायण और मानस के प्रणयन के समय की परिस्थितियां सर्वथा भिन्न थीं। यदि हम श्रीराम के चरित्र निरूपण पर दृष्टिपात करें तो प्रतीत होता है कि महर्षि बालमीकि ने उन्हें ऐसे वीरोदात्त नायक के रूप में चित्रित किया है, जिनमें देवोपम गुण विद्यमान हैं। बालमीकि के राम महापुरुष अधिक हैं और देवता या ईश्वर कम। श्रीराम को बालमीकि ने एक सुन्दर उपाधि दी है और वह रामायण की विचारधारा के सर्वथा अनुकूल है। वह उपाधि है 'नरदेव' अर्थात् मनुष्यों में देवस्वरूप।

इधर गोस्वामीजी द्वारा मानस में आराध्य श्रीराम परब्रह्म परमात्मा हैं, शाश्वत हैं। उनका अवतरण धर्म की स्थापना और लोक कल्याण के लिए होता है। मानस में श्रीराम का यथार्थ चिन्तन करने के लिए बुद्धि से अधिक श्रद्धा और विश्वास को महत्व दिया है।

बालमीकि और तुलसी की श्रीराम के सम्बन्ध में स्वतन्त्र मान्यता के परिवेष में हमें अन्य कथा-प्रसंगों का अन्तर भी सहज में बोधगम्य हो जाता है। उदाहरण के लिए हम कुछ घटनाओं का उल्लेख करेंगे :—

बालमीकि रामायण में श्री राम और लक्ष्मण ने अहिल्या के चरण स्पर्श किए और उनके दर्शन से अहिल्या शापमुक्त हो गई। मानस में श्रीराम के चरण स्पर्श से अहिल्या के शाप का अनुग्रह माना है।

धनुष यज्ञ का प्रकरण तो दोनों महाकाव्यों में बड़ी विषमता से निरूपित किया गया है। बालमीकि जी के अनुसार श्रीराम और लक्ष्मण के जनकपुर पहुंचने के पहले ही राजा गण निराशा में जनक से युद्ध कर चुके थे और एक वर्ष तक नगर का घेरा डाले रहे, जिससे जनक तथा पुरवासियों के सम्मुख बड़ा संकट उपस्थित हो गया।

तदान्तर देवताओं द्वारा दी गई चतुरंगिणी सेना की सहायता से जनक ने उन राजाओं को परास्त किया। मानस में इस प्रसंग का

प्रवाह ही दूसरा है। राजा लोग अपनी शक्ति का परिचय श्रीराम व लक्ष्मण के समक्ष ही देते हैं। बाल्मीकि रामायण में परशुराम उस समय उपस्थित होते हैं जब विवाह सम्पन्न हो जाता है और बरात अयोध्या को लौटती है। विश्वामित्र पहले ही प्रस्थान कर चुके हैं. किन्तु मानस में विवाह के पूर्व ही परशुराम का प्रकरण है।

वन में श्री राम, सीता और लक्ष्मण का चलने का क्रम रामायण और मानस में भिन्न है। रामायण के अनुसार पहले लक्ष्मण, बीच में सीता और दोनों की रक्षा करते हुए राम पीछे हैं। यह क्रम अधिक व्यावहारिक है, किन्तु मानस के आदर्श में इस क्रम में श्री राम आगे हैं, सीता बीच में और लक्ष्मण सबसे पीछे हैं।

अरण्य काण्ड में बाल्मीकि रामायण के अनुसार शरभंगजी को स्वर्ग की प्राप्ति पहले ही हो चुकी है और इन्द्र उन्हें लेने आए हैं, किन्तु श्री राम का आगमन सुनकर वह अपने प्रिय अतिथि का स्वागत कर लेना आवश्यक समझते हैं। मानस में श्रीराम के दर्शन से शरभंग का ब्रह्म लोक गमन बताया है और इन्द्र का वहां उल्लेख तक नहीं। इसी प्रकार मानस में सुतीक्ष्णजी श्रीराम के साथ अगस्त्य के आश्रम में जाते हैं, किन्तु बाल्मीकि रामायण में ऐसा उल्लेख नहीं है। आगे मारीच के प्रसंग में बाल्मीकि के अनुसार मारीच श्रीराम को मात्र शत्रु मानता है और शत्रु के हाथ से मरना उत्तम समझता है। बाण लगने पर वह राम का प्रिय करने की दृष्टि से सीता और लक्ष्मण पुकारता है। मानसकार ने मारीच द्वारा श्री राम को प्रभु मान लेने पर उनके बाण से मरना अच्छा समझा है।

किष्किन्धा काण्ड में बाल्मीकि रामायण के अनुसार सुग्रीव ने बाली के आगमन की एक बर्ष तक प्रतीक्षा की, किन्तु मानस में एक महीना बताया है। बाल्मीकि रामायण में बाली बध के अनन्तर बड़ा कारुणिक दृश्य उपस्थित होता है। सुन्दर काण्ड में रामायण के अनुसार हनुमान जी ने अशोक-वाटिका में पहुंचकर सीता जी को अंगूठी स्वयं दी, जबकि मानस में इसे पेड़ से छिपकर गिराने की बात है। हनुमान जी की पूंछ बांधने का मानस का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन रामायण से मेल नहीं खाता। बाल्मीकिजी के कथनानुसार हनुमानजी ने लंका के राक्षसों के घरों में अलग-अलग जाकर आग लगाई और विभीषण के घर नहीं गए, अतः उसके जलने का प्रश्न ही नहीं उठता।

इसी प्रकार और भी अनेक प्रसंग हैं जिनमें मानसकार गोस्वामी जी का भक्तिप्रधान चिन्तन है तो रामायणकार बाल्मीकि व्यवहार और घटनाक्रम की यथार्थता के अधिक निकट प्रतीत होते हैं। सामयिक परिस्थितियों को देखते हुए दोनों ही स्तुत्य और धन्य हैं।

भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरतां गरल सराहिअ मीचु॥

रघुवंश और मानस

—वटुकनाथ वाजपेयी

महाकवि कालिदास द्वारा प्रणीत रघुवंश महाकाव्य संस्कृत के महाकाव्यों में अद्वितीय स्थान रखता है। रघुवंश महाकाव्य के १९ सर्गों में कवि ने महाराज दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक २९ रघुवंशी राजाओं का आदर्शमय वर्णन किया है।

भिन्न-भिन्न शताब्दियों में रचित दोनों काव्यों-रघुवंश और राम चरित मानस में समानताओं एवं असमानता दोनों ही लक्षित होती हैं। रघुवंश के प्रारम्भ में कवि कालिदास शब्द और अर्थ को 'सम्पृक्त' कहते हैं 'वागर्थाविवसंपृक्तौ', तो तुलसीदास शब्द और अर्थ को जल और वीचि के समान भिन्न-भिन्न मानते हुए कहते हैं :

गिरा अरथ जल वीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।

कालिदास यदि अपनी रचना के उद्देश्य को बताते हैं कि "रघूणामन्वयं वक्ष्ये", तो तुलसी भी कहते हैं 'करन चहौं रघुपति गुन गाहा।'

विश्वामित्र के द्वारा राम लक्ष्मण की याचना रघुवंश में दशरथ तुरन्त स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु मानस में विश्वामित्र की 'अप्रिय बानी' सुनकर दशरथ का हृदय कांपने लगता है।

रघुवंश और मानस की ताड़का-वध की घटनाएं साम्य रखती हैं, परन्तु सुबाहु और मारीच का वध कुछ शास्त्रीय आधारों पर दोनों काव्यों में भिन्न है। जयन्त प्रसंग दोनों काव्यों में भिन्नता से दर्शाया है। खर नामक राक्षस से युद्ध का वर्णन दोनों काव्यों में कुछ-कुछ भिन्न है।

रघुवंश में जटायु को आहत देखकर रामचन्द्रजी का 'पितृशोक' नवीन हो जाता है और वे उसका यथासमय दाह संस्कार करते हैं, जब कि मानस में जटायु मरणासन्न अवस्था में 'हरिरूप' धारण करके रामचन्द्रजी की स्तुति करता है और रामचन्द्रजी उसे 'हरिधाम' भेजकर यथोचित क्रिया करते हैं। रामचन्द एवं सुग्रीव की मित्रता का कारण रघुवंश में कबन्ध का उपदेश बताया गया है, तो मानस के अनुसार इस मित्रता की प्रेरणा शबरी से मिलती है।

रघुवंश में सीता परित्यागादि घटनाओं का विस्तृत वर्णन है, जो मानस में उपलब्ध नहीं होता।

रघुवंश की मूल घटना रघुवंशी राजाओं के चरित का वर्णन करना है, जबकि मानस की मूल घटना महान् शक्तिशाली रावण का वध करना है।

रघुवंश में राम शिष्ट एवं दाशरथिः के रूप में दर्शाए गए हैं। मानस राम को विष्णु रूप में प्रस्तुत करता है।

मानस में प्राप्त नारी निन्दादि प्रसंग रघुवंश में अप्राप्य हैं।

दोनों ही काव्यों में मुख्य रूप से शृंगार के रस की अनूठी अनुभूति के दर्शन होते हैं, परन्तु कहीं भी औचित्य की सीमा का अतिक्रमण नहीं किया गया है। करुणादि रसों के पूर्ण परिपाक में भी दोनों कवि सिद्धहस्त थे। अन्त में यही कहना उचित होगा कि दोनों काव्यों का अपना अद्वितीय स्थान है।

तुलसीदास और कृत्तिवास

—डा० अरुण वसु

रामायण भारतीय संस्कृति की गंगोत्री है, मूल स्रोत है, जबकि महाभारत अथाह नीलवर्ण समुद्र है। इसीलिए तमिल कवि कम्बन, बंगला कवि कृत्तिवास, अवधी कवि तुलसीदास, असमिया कवि माधव कंडाली, सभी ने बालमीकि की इस कविता को अपनी-अपनी क्षेत्रीय भाषाओं में प्रस्तुत करने की आवश्यकता समझी। अतः उनकी कविताओं में बालमीकि की कविता के पांच आधारभूत सिद्धान्त—घरेलू गुण, नैतिक पवित्रता, पारिवारिक आदर्श, धर्मनिष्ठा तथा मानवता—पांच प्रकाशपुंजों की भांति चमकते हैं।

लेकिन इन सभी कवियों की कृतियों में अन्तर है। तुलसी ने केवल अनुवादक मात्र न रहकर, बालमीकि की कथा को किसी भी रूप में बिगाड़ा नहीं, बल्कि रामचन्द्र के देवत्व को प्रतिष्ठित करने में वे अन्य सभी कवियों को पीछे छोड़ गए हैं। स्मरण रहे कि संस्कृत रामायण के क्षेत्रीय भाषाओं के अनुवादों में मूल रामायण की पुरानी मान्यताएं खो गई हैं। मूल रामायण के राम एक पूर्ण मानव हैं, वे सभी मानवीय मूल्यों के भंडार हैं। लेकिन अन्य देशी भाषाओं की रामायणों के राम विष्णु के अवतार हैं, वे मानव-रूप में भगवान हैं।

हर युग में रामकथा युगीन आवश्यकताओं के अनुरूप ढलती रही है। इन परिवर्तनों को दर्शाने के लिए कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं। बालमीकि रामायण के अवध काण्ड के १००-१०४ पदों में चित्रकूट पर राम-भरत मिलन के अवसर पर राजा जनक और उनकी पत्नी सुनयना की कोई भी चर्चा नहीं है। तुलसी ने इसकी कल्पना की है। कृत्तिवास ने भी अपनी बंगला कृति में कई स्थलों पर परिवेश और पात्रों को बदला है। चित्रकूट में कौशल्या, जनक, सुनयना तथा अन्य लोगों की उपस्थिति की कल्पना से तुलसी ने पारिवारिक निष्ठा के दृष्टिकोण से भरत के चरित्र को और अधिक श्रेष्ठता प्रदान की है। श्रीराम वन में स्वर्ण-मृग के आखेट के लिए जा रहे हैं और सीता से कुटी में रहने को कहते हैं। इस अवसर पर सीता से श्रीराम का सम्भाषण कितना उत्तम बन पड़ा है। वह तो बालमीकि की कल्पना से परे की बात है। तुलसी के राम कहते हैं :

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला।
मैं कछु करबि ललित नरलीला॥

कृत्तिवास भी मारीच-वध तथा सीताहरण के मूल कथानक में परिवर्तन करने का साहस नहीं कर सके। तब तुलसी ने इतना बड़ा परिवर्तन कैसे कर लिया? आलोचक इसमें लाक्षणिक अर्थ ढूंढते हैं। रामचन्द्र राक्षसों के वध में लगे हैं, अतः सीता की उपस्थिति वांछित नहीं है। अतः वे सीता से अग्नि-निवास की प्रार्थना करते हैं। दूसरी ओर यदि सीताजी लक्ष्मण को प्रताड़ित नहीं करतीं तो लक्ष्मण उन्हें छोड़कर नहीं जाते।

वाल्मीकि रामायण में राम शम्बूक का अछूत होकर धार्मिक अनुष्ठान करने के दण्ड में वध कर देते हैं। कृत्तिवास की बंगला रामायण में यह घटना ज्यों-की-त्यों है, जबकि तुलसी के राम केवट के साथ मैत्री और भ्रातृत्व के प्रगाढ़ बन्धन में बंध जाते हैं। चित्रकूट में राम-भरत मिलन के अवसर पर भरत और शत्रुघन के साथ-साथ केवट को गले लगाते हैं। यही नहीं, राम के गुरू मुनि वशिष्ठ भी निषाद को गले लगाते हैं। लेकिन कृत्तिवास की कविता में इस अवसर पर निषाद का वर्णन ही नहीं। अछूत चांडालों के प्रति विष्णु के अवतार श्रीराम का अपूर्व प्रेम कवि के युग की उस परमानन्ददायक भक्ति के परिणाम-स्वरूप है जिसका उद्देश्य जाति और धर्म के भेदभाव को मिटाना था।

क्षेत्रीय भाषाओं के अनुवादों में न तो कृत्तिवास ने और न ही तुलसी ने 'रामायण' शब्द का सीधा उपयोग किया है। कृत्तिवास की कविता का नाम है 'श्रीराम पांचाली' अर्थात् कवि ने संगीत तत्व की प्रधानता वाली पांचाली शैली में इस कविता को रचा। तुलसी ने अपनी कविता का नामकरण 'रामचरितमानस' किया है।

कृत्तिवास बार बार कहते हैं कि अपने ज्ञान और सरस्वती की प्रेरणा ने उनसे यह काव्य लिखवाया है, जबकि तुलसी अपने पाठकों को बताते हैं कि वे तो कथावाचक मात्र हैं।

तुलसी ने कथाप्रवाह में बाल्मीकि का अनुसरण नहीं किया है। साथ ही उन्होंने जिस नीति और भक्ति तत्व का जो समावेश किया है वह बिल्कुल ही नया है तथा वह आध्यात्म रामायण से लिया गया है। दार्शनिक विवेचना के लिए तुलसी श्रीरामतायनी उपनिषद, श्रीरामगीता, योगवासिष्ठ रामायण, श्रीमद्भगवद्गीता आदि के ऋणी हैं। इनके अलावा उत्तर रामचरित, रघुवंश, प्रसन्न राघव आदि का भी मुक्तरूप से तुलसी ने उपयोग किया है तथा उनके काव्य में 'कुमारसम्भव' का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। कृत्तिवास की बंगला कृति में भी इन प्रभावों तथा साधन-सामग्री की विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

कृत्तिदास औरतुलसीदास का काल

कृत्तिवास और तुलसी १५वीं और १६वीं शताब्दी के अमर कवि हैं। बंगला कवि ने बंगला को समृद्ध बनाकर पूर्वी क्षेत्रीय भाषाओं के विकास की सम्भावनाएं जगाईं। इसी प्रकार तुलसी ने अवधी में मानस की रचना कर उत्तर भारतीय भाषाओं के विकास में योग दिया। ऐतिहासिक दृष्टि से कृत्तिवास का काल अधिक महत्वपूर्ण है। वह काल सांस्कृतिक उथल-पुथल का युग था। मुगल साम्राज्य से अलग होकर पठान राजाओं ने पूर्वी भारत में स्वतन्त्र राज्य बना लिये थे तथा उन्होंने बंगला विद्वानों और बुद्धिजीवियों को अपने धार्मिक, सांस्कृतिक प्रभाव-क्षेत्र में आकर्षित किया। सामाजिक संघर्ष पैदा करने के बावजूद ये संस्कृति के दूत सिद्ध हुए। इतिहास में मानव के महत्व के प्रति उदार, युगानुकूल तथा नई चेतना का उदय हुआ। सूफी मत फैला। इसी संघर्ष-पूर्ण युग के आरम्भ में कृत्तिवास ने बंगला रामकथा लिखी।

तुलसी ने एक शताब्दी बाद पदार्पण किया। अकबर (१५४२-१६०५) के राज्यकाल में जनता समृद्धि तथा मध्ययुगी पुनरुत्थान के आनन्द में मग्न थी। कला के बहुविध विकास का वह युग था। उस युग की सांस्कृतिक रचनात्मकता में जनता का पूर्ण सहयोग मिल रहा था। यह भावना कि जाति, धर्म या वंश नहीं बल्कि भक्ति से सन्त बनते हैं, जोर पकड़ रही थी। यह युग था मानस की रचना का। वाराणसी इस आन्दोलन का केन्द्र बन गया और इसे ही तुलसी ने अपने भक्तिवाद के प्रचार के लिए उपयुक्त समझा। उस समय असमिया, उड़िया, अवधी, मैथिली, बंगला, ब्रजभाषा, पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषाएं विकासोन्मुख अवस्था में थीं। इसी समय तुलसी ने अवधी और ब्रजभाषा के माध्यम से काव्य रचना आरम्भ की। रामभक्ति तथा क्षेत्रीय भाषाओं की विकासोन्मुखता ने मानस की रचना की प्रेरणा दी।

भगवान शिव भी रामभक्त थे। तुलसी के हनुमान, लक्ष्मण, भरत, विभीषण, नारद आदि सभी इसी भक्ति में लिप्त हैं। रामभक्ति का गुरुमंत्र 'रामनाम' उच्चारण है, जिसके महत्व के बारे में तुलसी लिखते हैं :

> नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
> जो सुमिरत भयो भांग तें तुलसी तुलसीदासु॥

इसकी तुलना में कृत्तिवास की घोषणा कि राम नाम जपने से सभी पाप धुल जाते हैं, कितनी हल्की है। इसके अलावा उनकी भक्ति राम-भक्ति से अधिक विष्णु भक्ति के समीप है। पूर्वी भारत में राम-भक्ति ने जोर नहीं पकड़ा, इसका एक कारण इस भाग में चैतन्य द्वारा हरि-भक्ति का प्रचार है। उत्तरी भारत का नाम-जाप पूर्वी भारत में घटकर केवल दुष्ट आत्माओं के निवारण मात्र के लिए ही रह गया।

केरल में रामचरितमानस की लोकप्रियता

—डा० मलिक मोहम्मद

गोस्वामी तुलसीदास कृत श्रीरामचरित मानस एक अत्यन्त महत्व शाली ग्रन्थ है। दक्षिण में 'रामचरितमानस' की प्रसिद्धि से हर कोई परिचित है। दक्षिण की प्रत्येक भाषा में मौलिक रूप से रचित राम-भक्ति काव्य के रहते हुए भी तुलसीकृत 'रामचरित' का अनुदित होना मानस की व्यापक लोकप्रियता की ओर संकेत करता है। दक्षिण के मलयालम भाषी विद्वानों का ध्यान उन्नीसवीं शती में सर्वप्रथम मानस के प्रति अधिक मात्रा में आकृष्ट हुआ था। बीसवीं सदी में राम-चरित मानस के कई रूपान्तर मलयालम में प्रकाशित हुए। अनेक मलयालम भाषी विद्वानों ने गद्य या पद्य में पूरे मानस का या उसके प्रमुख स्थलों का अनुवाद मलयालम में प्रस्तुत किया है। इनमें से कुछ तो प्रकाशित हैं और कुछ अप्रकाशित।

नील कण्ठ का गद्य नुवाद

सन् १९३५ के आसपास श्री कांबुगल नीलकंठ पिल्ले ने मलयालम में श्रीरामचरित मानस का गद्यनुवाद प्रस्तुत किया था। कांबुगल नीलकण्ठ पिल्ले ने स्वयं यह मन्तव्य व्यक्त किया है कि श्रीरामचरित मानस कंबरामायण और वाल्मीकि रामायण से भी अधिक मधुर-भक्ति रस सिंचित ग्रन्थ है। अनुवादक कांबुगल नीलकण्ठ पिल्ले तो अंग्रेजी, मलयालम और संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। उनके अनुसार अंग्रेजी में १७७६ में श्रीरामचरितमानस का अनुवाद हुआ था। उसी अंग्रेजी अनुवाद से मानस के मलयालम रूपान्तर के लिए उन्हें प्रेरणा मिली थी। प्रकाशित मलयालम गद्यानुवाद में प्रारंभ के १२० पृष्ठों के अनुवाद करने में श्री पिल्ले को हिन्दी के अच्छे जानकार चेतलेवासी श्रीरामन पिल्ले का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ था।

रामन का पद्यानुवाद

श्री रामचरित मानस का एक दूसरा प्रमुख मलयालम अनुवाद "तुलसी रामायण किलिप्पाट्टु" है। इस रूपान्तर के निर्माता पेट्टयिल श्री रामन पिल्ले आशान हैं। सन् १९२८ ई० में तिरुवनन्तपुरम् के श्री तुलसी ग्रन्थालय ने इसको प्रकाशित किया था। अनुवादक ने प्रस्तुत ग्रंथ में एषुत्तच्छन के मलयालम रामायण की किलिप्पाट्टु (शुकगीत) शैली अपनायी है। पूरे मानस का अनुवाद श्री आशान ने कर डाला है, लेकिन अभी तक केवल बालकाण्ड ही प्रकाशित हुआ है। अनुवादक की कुशलता को स्पष्ट करने वाला सुन्दर नमूना-देखिये :

"वर्णानामर्थसंघार्नां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ।"

(तुलसीदास)

"वर्णङ्ङलर्थ संघंगलेन्नवक्कु
रसंङ्गलक्कु
छन्दसुकल्लुक्कुमेन्नपोले

मंगलंगलक्कुं
कर्त्ताक्कलायाणीटुं
वाणीविघ्नेश्वरनमारे
भक्तया भूपट्ट ताणुवीणु
पाणि कूप्पुन्नेन ।"

(रामपिल्ले ग्राशान)

भट्टतिरि की रचना

एक ग्रौर उल्लेखनीय ग्रनुवाद है श्री टी० के० भट्टतिरि का । यह रचना छन्दोबद्ध है । संभवतः यह मलयालम में सर्वप्रथम प्रयास है । ग्रनुवादक श्री भट्टतिरि हिन्दी ग्रध्यापक हैं ग्रौर संस्कृत तथा हिन्दी के ग्रच्छे विद्वान भी । उन्होंने मलयालम एवं संस्कृत दोनों भाषाग्रों में कविता लिखकर पहले ही ग्रपने को कृत-हस्त बना लिया था । इस कारण मानसानुसारी पद्य रचना इनके लिए सरल प्रतीत हुई होगी । इस ग्रंथ में, मानस में प्रयुक्त छन्दों के ग्रनुरूप ही छन्दों के प्रयोगका स्तुत्य प्रयत्न किया गया है । उदाहरणार्थ, चौपाइयों के ग्रनुवाद में ग्रन्थकार ने मलयालम के ऐसे छंदों का प्रयोग किया है, जिनमें सोलह मात्राएं वर्तमान हों ।

गोपाल कुरुप का सराहनीय कार्य

महाकवि वेण्णिक्कुलम गोपाल कुरुप का मानस-ग्रनुवाद स्वयं एक ग्रत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है । यह भी छन्दोबद्ध है । वेण्णिक्कुलम मलयालम के यशस्वी महाकवि हैं । इनकी कविता की माधुरी तथा रोचकता सहृदयों के लिए सुविदित हैं । उदात्त भाव ग्रौर विचारों को ग्रत्यन्त प्रभाव शाली शब्दों में नाद-सौन्दर्य से संचलित करके इनकी कविता हमारी चेतना को समाकृष्ट करती है । महाकवि की कवि-प्रतिभा की सभी विशेषताएं इस ग्रनुवाद में परिलक्षित होती हैं ।

महाकवि ने रामचरित मानस के ग्रनुवाद का कार्य वर्षों पहले शुरू किया था । पर इसका पुस्तकाकार प्रकाशन सन् १९६७ में ही सम्भव हो सका ।

कुछ ग्रन्य ग्रनुवादक

मलयालम में श्री रामचरित मानस के ग्रौर ग्रनुवादकों का उल्लेख इस प्रसंग में बहुत ही ग्रनिवार्य है । ये हैं—श्री पी० के रामन मेनोन ग्रौर ए० वासु मेनोन । श्री रामन मेनोन का ग्रनुवाद मूल रूप से गीताप्रेस की 'मानस-व्याख्या' का रूपान्तर प्रतीत होता है । सन् १९५९ में नेशनल बुक स्टाल, कोट्टयम (केरल) ने इसका प्रकाशन किया । इसमें सम्पूर्ण रामचरित मानस का ग्रनुवाद शब्दार्थों के साथ दिया गया है । मलयालम भाषा-भाषियों के बीच तुलसी मानस के प्रति ग्रधिक श्रद्धा जागृत करने में इस ग्रन्थ का महत्वपूर्ण स्थान है । इसका प्रकाशन दो भागों में हुग्रा है । ग्रौर मूल का लिप्यांतरण ग्रौर ग्रन्थानुवाद बहुत सुन्दर बन पड़े हैं ।

श्री वासु मेनोन ने 'मानस' के बालकांड का ग्रनुवाद सन् १९५६ में "तुलसीदास रामायण बालकण्ड" के नाम से किया है । यह ग्रनुवाद पालक्काड़ (उत्तर केरल) एजूकेशनल सप्लैस डिपो द्वारा प्रकाशित हुग्रा है । श्री मेनोन ने ग्रनुवाद करने में ग्रधिक स्वतन्त्रता ग्रपनाई है । इस ग्रन्थ में उन्होंने कथा को कई ग्राकर्षक शीर्षकों में विभजित कर दिया है । यह ग्रनुवाद भी मलयालम भाषी पाठकों के लिए सरल ग्रौर रुचिकर हुग्रा है ।

मलयालम पत्रिकाग्रों में मानस सम्बन्धी सामग्री प्रस्तुत करने वालों में श्री एन० चन्द्रशेखरन नायर तथा कुछ ग्रन्य लेखकों का उल्लेख हुग्रा है । उनके ग्रलावा मलयालम में मानस के ग्रौर भी कुछ ग्रनुवादक हुए होंगे ।

रामचरितमानस और मलयालम के रामकाव्य

—डा० विश्वनाथ अय्यर

राम के गुण अनन्त हैं और उनकी अनेकानेक कथाएं जनता के कण्ठों से मुखरित हुई हैं । । संस्कृत भाषा में जिस प्रकार अनेक रामकाव्य लिखे गए उसी प्रकार अन्य भाषाओं में भी रामकाव्य रचे गए । इतिहास और भूगोल के अनिवार्य तत्वों के कारण प्राचीन युग में आर्यावर्त और द्राविड़ का राजनैतिक सम्बन्ध घटता-बढ़ता रहा । किन्तु एक सर्वमान्य सामान्य संस्कृत भाषा के माध्यम से वैचारिक आदान-प्रदान सुलभ था । उत्तर भारत की भक्ति-वांगमय-परंम्परा की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में—"भक्ती द्राविण उपजी लाये रामानन्द" उक्ति में 'भक्ती' से तात्पर्य रामभक्ति से है । उत्तर भारत में रामभक्ति का सन्देश एवं प्रचार लाने का श्रेय रामानन्द को दिया गया है । प्रारम्भ में संतकवियों की निर्गुण-धारा की धूम थी । सगुण धारा, जिसमें रामभक्ति का काव्य बाद में रचा गया, के प्रमुख कवि तुलसीदास ही थे ।

धार्मिक क्षेत्र में द्राविड़ की अपनी परम्परा कुछ विलक्षण रही है ।

यहां वैष्णव आलवार और शैव नाथनार लोग हुए थे । उनके प्रवन्ध्यम तथा तेवारम ग्रन्थ उच्चकोटि के भक्तिग्रन्थ थे ।

रामकाव्य के तीन युग

मलयालम के रामकाव्यों को हम तीन युगों में विभक्त कर सकते हैं—एषुत्तच्छन-पूर्वयुग, एषुत्तच्छन युग और एषुत्तच्छन उत्तर-युग । एषुत्तच्छन-पूर्व-युग में तीन प्रमुख रामायण रचे गए —'रामचरितम', कण्णश्शरामायणम व रामकथप्पाट्टु । एषुत्तच्छन की रचनाएं आध्यात्म रामायणम् और इरुपत्तिनालुवृतम प्रसिद्ध हैं : एषुत्तच्छन के बाद केरल वर्मा कृत केरलवर्मरामायणम (बालमीकि रामायण का अनुवाद) आता है । इसके पश्चात् मलयालम साहित्य की दो विशेष धाराएं उल्लेखनीय हैं – कथकलि और साभिनय प्रस्तुत करने योग्य तुल्लल । कई कथकलि-ग्रन्थों की वस्तु रामकथाश्रित है । कई तुल्लल ग्रन्थ रामकथा पर आधारित हैं ।

रामकवि

अब रामचरितमानस और मलयालम के रामकाव्यों को आमने-सामने रखकर थोड़ा-सा विचार करें । सर्वप्रथम विचारणीय तत्व इन कवियों के व्यक्तित्व का है । मानसकार प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदास महान भक्त थे । कालगणना की दृष्टि से मलयालम के रामकवियों में सर्वप्रथम बारहवीं सदी के रामचरितकार आते हैं । वैसे इस काव्य के रचयिता पर वादविवाद अभी जारी है । फिलहाल हम इस बहुमत को लेकर चलें कि रामचरितकार त्रावणकोर राज्य के राजा श्रीराम ही थे जिन्होंने अपनी सेना के सिपाहियों में वीरता का संचार

करने के लिए रामचरितम् की रचना की थी। अगला ग्रन्थ चौदहवीं सदी के उत्तरार्ध का कण्णशा रामायणम् है। इसके रचयिता मध्य केरल के निशणम गांव के रामपणिक्कर हैं। इनके परिवार का नाम कण्श्शन है। रामायणम के रचयिता काव्य-कला की दृष्टि से सफल रहे। वे सफल योद्धा, प्रशासक आदि थे। तथापि केरलवर्मा का व्यक्तित्व एषुत्तच्छन या तुलसी का व्यक्तित्व-सा भक्तिप्रधान और दार्शनिक नहीं था।

इस प्रसंग में सर्वप्रथम स्थापना यह है कि तुलसीदास की रचना प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मलयालम के रामकाव्य से प्रभावित नहीं रहीं, न मलयालम का रामकाव्य ही तुलसी की रचना से प्रभावित है। कारण स्पष्टतः भोगोलिक है।

रामचरितम्

बारहवीं शताब्दी की रचना मलयालम के प्रथम रामकाव्य रामचरित की 'मानस' से तुलना करने में कई कठिनाइयां हैं। एक तो रामचरितम् का शुद्ध व्याख्यान सहित सम्पूर्ण ग्रन्थ अभी उपलब्ध नहीं है। इस कवि ने अपनी रचना का नाम 'रामचरितम्' रखा है। कथा हनुमत्सन्देश एवं राम-रावण युद्ध तक सीमित है। कवि ने वाल्मीकि के पथ का अनुगमन कर रावण के मंत्र-परामर्श का वर्णन किया है। कंवर की तरह रामचरितकार भी वीर रस का वर्णन करने में बड़ा आनन्द पाते हैं। शब्द चमत्कार भी उनको प्रिय है।

रामायणम्

कण्णश्शरामायणम् के कई काण्ड प्रकाशित हैं। परन्तु यह लेख लिखते समय उत्तरकाण्ड ही मुझे विचारार्थ मिल सका है। इस उत्तरकाण्ड में लंका से रामादि के अयोध्या लौटने और राज्यतिलक से बाद की कथा है। ऋषियों के मुख से रावणादि वृत्तान्त का विस्तृत वर्णन, सीता-बनवास लव-कुश जन्म आदि की भी (सरयू में प्रवेश तक की) कथा है। कवि ने अन्त में घोषणा की है कि मैं वाल्मीकि के पथ पर चलता हूं। तुलसी ने तो उत्तरकाण्ड में रामराज्य की स्थापना के साथ प्रमुख कथातत्व समाप्त किया।

रातकथप्पाट्टु पन्द्रहवीं शताब्दी की अन्य मलयालम काव्य रचना है, जिसकी भी कथावस्तु रामायण है। इसे तमिल काव्य से प्रभावित-तमिल-मिश्रित मलयालम में लिखित ग्रन्थ स्वीकार किया गया है। हाल ही में डा० पी० के० नारायण पिल्लै की साधना के फलस्वरूप पूर्ण ग्रन्थ व्याख्या सहित प्रस्तुत हुआ और लोगों का ध्यान आकृष्ट कर सका है।

अध्यात्मरामायणम् और मानस

अब हम एषुत्तच्छन कृत अध्यात्म रामायणम् पर पहुंचते हैं। तुलना की सम्भावना यहां बढ़ती है। तुंचतु एषुत्तच्छन—इनका पूरा नाम तुंचतू रामानुज एषुत्तच्छन है। ये केरल के निरुर नामक स्थान पर भूजात हुए और इनके अन्तिम दिन चिट्टूर नामक गांव में बीते। ये सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में जीवित थे। पता चलता है कि वेदाधिकार से वंचित जाति में जन्म लेने के बावजूद एषुत्तच्छन ने संस्कृत में लिखे पुराणादि का जबरदस्त ज्ञान प्राप्त किया था। चम्पशशेरी—नरेश के आदेश से उन्होंने संस्कृत के अध्यात्म रामायण का अनुवाद मलयालम में किलिप्पाट्टु के रूप में किया। उनका अध्यात्मरामायण भक्ति और ज्ञान के भाव से मधुर है। उनका व्यक्तित्व भक्तिपूर्ण सन्त का था। एषुत्तच्छन ने अध्यात्मरामायण का अनुवाद ही मुख्यतः किया है। यत्र तत्र कण्णश्शरामायण आदि से सामग्री लेकर अपने काव्य का पल्लवन भी किया है। तुलसी ने असल में एक स्वतन्त्र रामायण ही लिखा है। एषुत्तच्छन की सशक्त उक्ति ने गम्भीरतापूर्वक मूल-कथा का ऐसा पद्यमय रूपान्तर प्रस्तुत किया है जो अनुवाद की कसौटी पर खरा उतरा है। पर एषुत्तच्छन कहीं भी सूखे अनुवादक नहीं रहे। मलयालम के प्रवाहयुक्त मात्रिक छन्द, गम्भीर तत्तसम पदावली का सानुप्रास नियोजन, अर्थ की गम्भीरता का निवेश आदि एषुत्तच्छन के काव्य को अतिशय प्रौढ़ता देते हैं। तुलसीदास ने मुख्यतः दोहा, सोरठा, चौपाई का प्रयोग किया है। अन्य नाना छन्दों में प्रयोग बहुत कम हुआ है। संस्कृत पद्यों का स्वीकृत छन्दों में प्रयोग अवश्य है। मलयालम-भाषी पाठक को सुन्दरकाण्ड और युद्धकाण्ड में एषुत्तच्छन की काव्यधारा तुलसी की काव्यधारा से अधिक सशक्त लगती है।

तुलसी और एषुत्तच्छन की अन्य मार्मिक समानता काव्य के भाषा निबन्धन में है। संस्कृत एवं प्राकृत में प्रचलित रामकथा देश-भाषा अवधी में प्रस्तुत करने की बड़ी सेवा तुलसी ने की थी। उन्होंने जिस अवधी का प्रयोग किया है वह शिक्षितों की है। एषुत्तच्छन ने रामायण की रचना सशक्त और तत्सम प्रधान मलयालम में की है।

तेलगू साहित्य में रामचरितमानस

—स्वामी केशव तीर्थ

रामचरितमानस में प्रतिपादित जीवन का मुख्य ध्येय एवं महान् आदर्श हमारे हृदयों में बसे रावण (काम) को निष्कासित कर उसके स्थान पर भगवान राम की प्रतिष्ठा करना है। नर का उद्भव नारायण के अनुचर के रूप में होता है, किन्तु बाद में वह स्वयं नारायण पद प्राप्त करता है। तुलसीकृत रामचरितमानस विश्व के समक्ष जीवन का यही आदर्श प्रस्तुत करता है।

सम्पूर्ण भारत में राम की भक्ति से सम्बन्वित स्थानों में आंध्र प्रदेश राज्य अग्रणी एवं प्रमुख है। दण्डकारण्य इसी क्षेत्र में स्थित है जहां बनवास की अवधि में श्रीराम ने निवास किया था। भद्राचलम आंध्र लोगों की रामभक्ति का महान प्रतीक है। इस भूमि में कोई भी ऐसा नगर या गांव नहीं है जहां श्रीराम का कोई मन्दिर न हो और जहां के नागरिकों के जीवन में श्रीराम की भक्ति के चिह्न न दिखाई पड़ते हों।

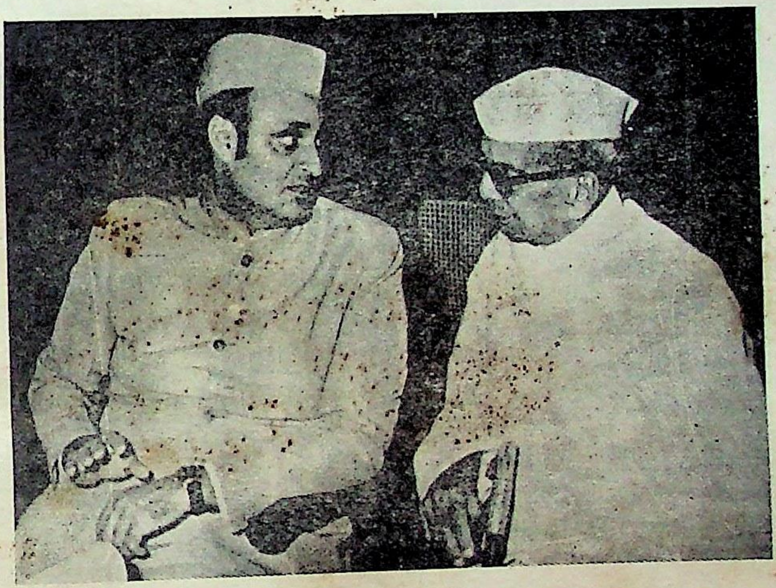
इस राज्य में राम कथा को आधार बनाकर अनेक साहित्यिक ग्रंथों का प्रणयन हुआ है। 'भास्कर रामायण', 'रंगनाथ रामायण', 'गोपीनाथ रामायण', श्रीमद् आंध्रवाल्मीकि रामायण' इत्यादि ग्रन्थों में सरस्वती की कृपा से राम कथा का गान किया गया है। भद्राचलम के रामदास, तुमु नरसिंहदास त्यागराय भक्तिपदों में इन कवियों की राम के प्रति अप्रतिभ भक्ति और निष्ठा के दर्शन होते हैं। राम का नाम केवल साहित्यिक ग्रन्थों में ही नहीं लिखा मिलता, बल्कि साधु-संन्यासियों और भिखारियों के मुंह से इसे रोज सुना जा सकता है। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, यदि आंध्र के लोग तुलसी की रामायण के प्रति विशेष अनुरक्त हैं।

तुलसीकृत रामचरितमानस का हिन्दी से तेलगू में सर्वप्रथम अनुवाद सन् १८८० ई० में महान कवि और संगीतज्ञ सिस्तु कृष्णमूर्ति शास्त्री और श्री मंडन नरहरि कामेश्वर द्वारा किया गया था, किन्तु यह अनुवाद अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ। मूल हस्तलिपि मद्रास के हस्तलिपि पुस्तकालय में देखी जा सकती है। मद्रास से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका 'परिशीलन' के जून-जुलाई, १९५६ के अंक में पृष्ठ १६ से २७ तक श्रीमती निवेदिता का एक लेख छपा था, जिसका शीर्षक था, 'तुलसीदास के रामायण का पहला तेलगू अनुवाद'। इस लेख में रामचरितमानस के उपरोक्त अनुवाद की विशद समीक्षा की गई थी।

तुलसी रामायण के नाम पर एक ग्रन्थ 'वगुचुक्क ग्रन्थमाला' और मिलता है जो स्वर्गीय श्री भगवतुल नरसिंह शर्मा द्वारा १९२७ में लिखा और प्रकाशित किया गया था। १९२७ में पुनः स्वर्गीय श्री पसुमूर्ति श्रीनिवास राव, बी० ए० ने 'श्री तुलसीदास रामायण' नाम से तेलगू में एक ग्रन्थ लिखा जो मद्रास के बविल्ल रामास्वामी शास्त्रुलू एंड सन्स द्वारा प्रकाशित किया गया था। १९५३ में आध्यात्मिक ग्रन्थमाला, काकीनाड के स्वर्गीय श्री नामुल अप्पाराव ने 'श्रीरामचरितमानसम'

नामक ग्रन्थ लिखा और प्रकाशित कराया जिसमें बालकाण्ड का प्रथम खण्ड ही प्रकाशित हुआ। उनके इस ग्रन्थ पर श्री वसुमूर्ति श्री राममूर्ति, एम० ए० ने कार्य जारी रखा और बालकण्ड का द्वितीय भाग लिखकर १९७२ में प्रकाशित कराया। १९५४-५५ में 'आंध्र वचन तुलसी रामायण' नामक एक और ग्रन्थ श्री तांकल साम्बमूर्ति द्वारा प्रकाशित किया गया। १९५६-५७ में श्री मीलावरपु सत्यनारायण का 'श्री आंध्र तुलसी रामायनमु' प्रकाशित हुआ। श्री डी० सत्यनारायणन की साहित्यिक कृति 'श्रीरामचरितमानसमु' दो भागों में राजमहेन्द्री से प्रकाशित की गई। १९६२ में श्रीमती नैलनूथुला पार्वती कृष्णमूर्ति की साहित्यक कृति 'श्रीरामचरितमानस' प्रकाशित हुई।

१९६३ में इस निबंध के लेखक और श्री पाटिल तिम्मा रेड्डी ने श्री रामचरित मानसमु (श्रीमद् आंध्र तुलसी रामायणमु) शीर्षक वाली 'मंजरी द्विपद' के मूल पाठ का शाब्दिक अनुवाद संयुक्त रूप से करना आरम्भ किया। प्रथम चार काण्डों का अनुवाद लेखक ने किया तथा शेष तीन काण्डों का अनुवाद श्री पाटिल सिम्मा रेड्डी ने क्रिया। इस ग्रन्थ का प्रकाशन श्री कर्पूरप्पू रामकृष्णमूर्ति द्वारा श्री रामतीर्थ सेवाश्रम, पिडुगुरल्ला से किया गया। आंध्र प्रदेश सरकार ने इस ग्रन्थ को उत्तम अनुदित कृति मानकर विशेष पुरस्कार से पुरस्कृत किया है।



सभापति डा० कर्णसिंह व उपाध्यक्ष स्वर्गीय सेठ गोविन्ददास



अयोध्या से राम-वन-गमन का एक चित्र : रामचरितमानस की एक प्राचीन प्रति से

बरान्निकोव द्वारा मानस का रूसी अनुवाद

—डा० प्योत्र बरान्निकोव

अलेक्सेई बरान्निकोव मेरे पिता थे। मैं उनके उस प्रयत्न के बारे में लिखना चाहूंगा जो उन्होंने रामायण को रूसी में अनुदित करने में किया था। अपने पिता के पत्रों को पढ़कर ही मैं यह अनुमान लगा सका हूं कि इस अनुवाद की दिशा में वह किस प्रकार काम करते थे। वह कोई सामान्य समय नहीं था। द्वितीय विश्वयुद्ध चल रहा था। नाज़ी दरिन्दों ने मेरे देश पर आक्रमण कर दिया था। तमाम कठिनाइयों के बावजूद रामचरितमानस के अनुवाद का काम चलता रहा। यह काम एक ऐसे आदमी द्वारा किया जा रहा था जिनका स्वास्थ्य गम्भीर बीमारी के परिणामस्वरूप जर्जर हो चुका था, लेकिन समस्त सोवियत जनता की तरह उनका भी यह विश्वास था कि बुराई पर अच्छाई की विजय होगी। उन्हें इस बात का भी विश्वास था कि उनका अनुवाद प्रकाशित होगा और वह सोवियत एवं भारतीय दोनों जनगणों को लाभान्वित करेगा।

युद्ध आरम्भ होने के समय मेरे पिता लेनिनग्राद में निवास कर रहे थे। लेकिन इसके एक महीने बाद सोवियत सरकार ने उन्हें अन्य विद्वानों एवं वैज्ञानिकों के साथ उत्तर कजाखस्तान स्थित बोरोवोये नामक स्थान में पहुंचा दिया। वहां से मेरे पिता ने मुझे कई पत्र लिखे। नीचे इनमें से कुछ उद्धरण प्रस्तुत किए जा रहे :

६ सितम्बर, १९४३ : "कल, अन्ततः मैंने अपने रामायण को पूरा किया। मैंने इसके कुल ११०६ पृष्ठों में से प्रत्येक को पूर्ण रूप से किया है। यह सही है कि अभी भी बहुत कुछ करना शेष है। अन्तिम रूप से, साहित्यिक दृष्टि से इसको परिष्कृत करने और टीका लिखने का काम रह गया है।"

२८ नवम्बर, १९४३ : "मैंने अपनी कृति को अन्तिम रूप से 'चमकाना' आरम्भ कर दिया है। लेकिन मेरी प्रगति बहुत धीमी है। मेरे सामने बोरोबोये में इसको पूरा करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं है। कई भारतीय शब्दों के यूरोपीय भाषाओं में कोई पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। एक अनुवादक के रूप में मैंने उन यूरोपीय शब्दों को देना अनुचित समझा जो केवल अंशतः ही भारतीय धारणाओं के निकट थे। इसीलिए मैंने रूसी अनुवाद में भारतीय शब्दों को विशेष रूप से प्रस्तुत किया है। इनको पाद-टिप्पणियों में स्पष्ट किया गया है।"

इस काम का स्वरूप किस तरह व्यापक था, इस सम्बन्ध में मैं कहना चाहता हूं कि रामचरितमानस की अनुक्रमणिका ही बड़े आकार के ३७ पृष्ठों तक पहुंचती है। इसमें वास्तव में भारतीय पौराणिक कथाओं तथा संस्कृत के शब्द संग्रह सम्मिलित हैं। इस तरह के २७०३ उदाहरण रूसी पाठक के लिए टीका के साथ दिए गए हैं।

५ दिसम्बर, १९४३ : "मैं अब भी साहित्यिक भाषा की दृष्टि से

अपने अनुवाद को 'चमका' रहा हूं। लेकिन यदि मैं बीमार न पड़ा और यदि अन्य बाधाएं उपस्थित न हुई तो मैं ग्रीष्म तक काम पूरा कर दूंगा। मैं पूरे दिन काम कर रहा हूं, मैं सवेरे नाश्ते से पहले ३० मिनट केलिए प्रातः कालीन और अंधेरा हो जाने के बाद ३० मिनट के लिए सांध्य-कालीन वायु सेवन के लिए जाता हूं। इस बीच मैं पूरे समय काम करता हूं।"

१९४४ में पिताजी लेनिनग्राद लौट आए। दिनांक १५ जनवरी, १९४५ के अपने पत्र में उन्होंने मुझे यह लिखा था।

"मैं अपने काम में भरपूर शक्ति से प्रयत्न कर रहा हूं। सम्भवतः मैं टीका लिखने तथा अनुवाद के सिंहावलोकन का काम पतझड़ तक पूरा कर लूंगा। काम की मात्रा अत्यधिक है। यह एक हजार पृष्ठों से भी अधिक संख्या की कृति होगी।"

११ मार्च, १९४५ : "मैं रामायण पर घोर परिश्रम कर रहा हूं। आशा करता हूं कि मैं इस दिशा में काम के मुख्य भाग को ग्रीष्म में पूर्ण कर लूंगा।"

भारत न जा सके

बहुत ही कम लोग जानते हैं कि पिताजी को भारत-यात्रा के लिए १९४६ में ही आमंत्रित कर लिया गया था। हर चीज उनके विमान से रवाना होने के लिए तैयार रखी गई थी। पिताजी १९४७ का नव वर्ष अपने भारतीय मित्रों के साथ व्यतीत करने की आशा कर रहे थे। लेकिन उनके रोग ने उनको उस देश को देखने से वंचित किया जिसने तुलसीदास को जन्म दिया था और जिस देश के अध्ययन में पिताजी ने अपना समग्र जीवन ही लगा दिया था।

रूसी में रामचरितमानस के प्रकाशन का सोवियत जनता ने हार्दिक स्वागत किया था। मुझे आज भी उस विशेष रेडियो-कार्यक्रम का स्मरण हो आता है जो महान कृति के सम्बन्ध में प्रसिद्ध भारतीय विद्वान राहुल सांकृत्यायन के साथ साक्षात्कार पर आधारित था। मेरे घर पर पूरे कार्यक्रम का विवरण है।

पिताजी ने रामचरितमानस के अनुवाद के साथ न केवल टीका ही प्रस्तुत की, बल्कि विस्तृत अनुसंधान का काम भी किया। इस विस्तृत अनुसंधान कृति का रूसी से हिन्दी में अनुवाद डाक्टर नारायण शुक्ल ने किया था। लखनऊ के विद्यामन्दिर प्रकाशकों ने पुस्तकाकार रूप में इसे अलग से प्रकाशित किया था। इसके अलावा पिताजी ने कई अन्य लेख भी लिखे थे।

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास।।
प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुं एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान।।

'मानस चतुश्शती' परिकल्पना एवं इतिहास

—डा० लक्ष्मीनारायण दुबे

पराधीन भारत में सम्वत् १९८० (सन् १९२३) में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने सर्व प्रथम गोस्वामी तुलसीदास के महापरिनिर्वाण की तृतीय शताब्दी मनायी थी । उस समय रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन और ब्रजरत्नदास के सम्पादकत्व में "तुलसी-ग्रन्थावली" (तीन खण्डों में) प्रकाशित हुई थी । भारत के स्वतन्त्रता-काल तक, इस बीच तुलसी पर टीका, भाष्य, समीक्षा और शोध के रूप में विपुल साहित्य लिखा गया । । भारत की स्वतन्त्रता (सन् १९४७) के पश्चात् तुलसी की प्रतिष्ठा तथा सम्मान में दिन दूनी-रात चौगुनी वृद्धि होती गई । राष्ट्रीय, लोकतांत्रिक, प्रगतिशील एवं समाजवादी भारत ने तुलसी को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया । किसी भी देश में उसके राष्ट्रकवि की जयंती उतने धूम-धाम से नहीं मनायी जाती, जितनी समूचे भारत में तुलसी की ।

प्रेरणा की भाव-भूमि

स्वतन्त्र भारत में मनीषियों की शताब्दी मनाने की स्वस्थ परम्परा विकसित हुई । इनमें से तीन महत्वपूर्ण समारोह हुए : एक तो भगवान् बुद्ध का पच्चीसौ वां महापरिनिर्वाण समारोह (सन् १९५६-५७), दूसरा रवीन्द्र शत-वार्षिकी (सन् १९६१) और तृतीय महातमा गांधी जन्म शत-सम्वत्सर (सन् १९६९) यद्यपि इस समय तक मानस-चतुश्शती का विचार प्रस्फुटित हो चुका था, फिर भी गांधी-शताब्दी ने उसे परिपुष्ट किया ।

इन सबसे हटकर एक घटना और हुई जिसने सबका ध्यानाकर्षण किया । वह थी अंग्रेजी के महाकवि शेक्सपियर की चतुर्थ जन्म-शताब्दी । यह जन्म शताब्दी २३ अप्रैल, सन् १९६४ को ग्रेट ब्रिटेन में शेक्सपियर के नगर स्ट्रेटफर्ड में धूमधाम से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मनायी गयी । सैकड़ों देश-विदेश के राजदूतों ने स्ट्रेटफर्ड में शेक्सपियर की समाधि पर अपने-अपने देशों की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित की । अंग्रेज जाति के इस महान् सांस्कृतिक आलोक-स्तम्भ के प्रति अपनी सम्मान-भावना व्यक्त करना, इंग्लैंड के साथ मैत्री-भावना के मार्ग को प्रशस्त करना था । परन्तु तुलसी के साथ ऐसा कौन करता जबकि वे भारतीय संस्कृति के सर्व महान् प्रतीक और हमारे राष्ट्रकवि थे ? इसीलिए 'मानस'—चतुशती देश में ही सिकुड़ कर रह गयी । सिर्फ सोवियत रूस ने तुलसी के माध्यम से भारत का प्यार जीता है ।

शेक्सपियर (सन् १५६४-१६१६) तुलसीदास (सन् १५३२-१६२३) के समकालीन थे । अतएव, यह सर्वथा स्वाभाविक, प्रसंगानुकूल एवं समयोचित था कि शेक्सपियर के समान तुलसी की भी चतुश्शती मनायी जाए परन्तु उसकी तिथि सन् १९३२ तो परतन्त्र भारत में निकल चुकी थी और पंच शताब्दी तो सन् २०३२ में पड़ेगी । इसलिए भारत के राष्ट्रीय ग्रन्थ 'रामचरित मानस' की चार सौवीं जयंती

मनाने का विचार आया।

पूर्ववर्ती एवं परवर्ती स्थितियां :

भारतीय साहित्य में प्रथम बार सम्भवतः किसी ग्रन्थ या महाकाव्य की शताब्दी मनायी जा रही है। 'गीता' की जयंती मनायी जाती रही है, परन्तु इस प्रकार कोई महोत्सव नहीं मनाया गया। स्वर्गीय जयशंकर 'प्रसाद'—(सन् १८८९-१९३७) के महाकाव्य 'कामायनी' (सन् १९३६) की रजत-जयन्ती की बात वाराणसी में चली थी, परन्तु उसे राष्ट्रीय स्वरूप नहीं मिल पाया था। इसी प्रकार स्वर्गीय सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (सन् १८९७-१९६१) की प्रथम कविता 'जुही की कली' जिस का रचना-काल सन् १९१६ है, की स्वर्ण-जयन्ती या अर्द्धशती मनाने की पहल सन् १९६६ में काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा की गयी थी—उसे भी व्यापकत्व प्राप्त नहीं हो सका।

इसलिए कम-से-कम हिन्दी-जगत् में तो 'मानस चतुश्शती' प्रथम तथा ऐतिहासिक घटना है।

'मानस चतुश्शती' का प्रभाव इतर भी पड़ रहा है। मराठी के संत कवि एकनाथ तुलसी के परम मित्र थे। एकनाथ ने 'नाथ भागवत' या 'एकनाथी भागवत' (भागवत के 'एकादश स्कन्ध' पर लिखित टीका) का लेखन शक सम्वत् १४९२ से १४९५ के मध्य किया था। उन्होंने उसके प्रथम पाँच अध्यायों की रचना पैठण (मराठवाड़ा) में की थी और शेष ग्रन्थ की रचना काशी में मणिकर्णिका घाट पर की थी। इसी बीच एकनाथ-तुलसी का सत्संग हुआ था। जिस प्रकार 'भाषा' में 'रामचरितमानस' के लिखने के कारण तुलसी को काशी के पण्डितों का कोप-भाजन बनना पड़ता था, उसी प्रकार एकनाथ के 'भागवत' पर भी काशी की संस्कृताभिमानी विद्वत् मण्डली क्षुब्ध हुई थी। अपने पक्ष को प्रस्तुत करने हेतु प्रथम तो उनके पुत्र हरि पंडित और तद्नन्तर स्वयं संत एकनाथ को अखाड़े में उतरना पड़ा था। अंततः तुलसी के समान एकनाथ भी सफल और विजयी हुए और शक सम्वत् १४९५ के कार्तिक मास में मराठी भागवत की काशी में शोभा-यात्रा निकाली गयी। इसके पश्चात् ही 'मानस' लिखा गया। इसीलिए (सन् १९७३-७४) में "मानस चतुश्शती" समान, उसी के प्रभाव-स्वरूप, 'एकनाथी भागवत' की मराठी-जगत् में चतुश्शती मनायी जा रही है।

आर्य-समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती (सन् १८२४-१८८३) के आर्य समाज की स्थापना (१० अप्रैल, सन् १८७५) की प्रथम शताब्दी (सन् १९७५) के साथ ही साथ उनके महान् ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की भी प्रथम शताब्दी (सन् १९७४-७५) मनायी जा रही है जिस पर भी 'मानस चतुश्शती' की प्रभावाभिव्यंजना है।

'मानस' का रचनारम्भ-काल

यह सौभाग्य की बात है कि तुलसी ने 'रामचरित मानस' के रचना-काल का संकेत कर दिया अन्यथा उनके जीवन और कृतित्व के समान, उनकी इस सर्वश्रेष्ठ कृति के विषय में अटकल बाजियों से काम लेना पड़ता। तुलसी द्वारा रचित द्वादश प्रामाणिक कृतियों में 'रामचरित मानस' और 'पार्वती मंगल' ही ऐसी दो रचनाएं हैं जिनकी कवि द्वारा रचना-तिथियां मिलती हैं। 'पार्वती मंगल का रचना-काल स्वयं कवि ने इस प्रकार दिया है :—

जय सम्वत फागुन सुदि पांचे गुरु दिनु।
अस्विनि बिरेचेउं मंगल सुनि सुख छिनु छिनु॥

"रामचरित मानस' की सृजन-यात्रा को कवि ने उसकी प्रस्तावना में निम्न तिथियों में बांध दिया है—

(क) सम्वत सोरह सै एकतीसा। करों कथा हरिपद धरि सीसा॥

(ख) नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं।
तीरथ सकल तहां चलि आवहिं॥
सब विधि पुरी मनोहर जानी।
सकल सिद्धि प्रद मंगल खानी॥
बिमल कथाकर कीन्ह अरंभा।
सुनत नसाहि काम मंद दम्भा॥

(ग) रचि महेस निज मानस राखा।
पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा ।।
तातें रामचरितमानस बर।
धरेउ नाम हिग्रं हेरिहरषि हर ।।

उपरोक्त काव्यांशों में सम्वत्, मास, तिथि ग्रौर दिन की स्पष्ट चर्चा मिलती है परन्तु पक्ष की नहीं। 'मानस' में ग्रन्यत्र यह चर्चा भी ग्रायी है कि रामजन्मोत्सव की नवमी का सम्बन्ध शुक्ल पक्ष से है।

नौमी तिथि मधुमास पुनीता।
सुकुल पच्छ ग्रभिजित हरिप्रीता ।।
'गीतावली' में भी कहा गया है—
चैत चारु नौमी तिथि सित पख मध्य गगन गत भानु ।।

इससे सर्वथा स्पष्ट ग्रौर निश्चित है कि 'मानस' का रचनारम्भ सम्वत् १६३१ में चैत्र शुक्ल नवमी, मंगलवार को हुग्रा। कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि यह रचनारम्भ की तिथि न होकर रचना-समाप्ति की तिथि है, परन्तु यह उचित नहीं है। तुलसी ने 'मानस' की प्रस्तावना ग्रन्थ-लेखन के पश्चात् लिखी, परन्तु उन्होंने 'प्राक्कथन' शब्द का उपयोग नहीं किया।

कहते हैं कि सम्वत् १६३१ में श्री रामजन्म के समस्त योग, लग्नादि एकत्र थे। दो कारण ग्रौर भी थे। 'मानस-पीयूष' के रचयिता महात्मा ग्रंजनी-नन्दन शरण के मतानुसार श्रीराम के सोलह कलाग्रों के ग्रवतार होने पर भी रावण के वध हेतु उन्हें इकत्तीस बाण छोड़ने पड़े थे। इसी विचार से 'मानस' कार ने सोलह में इकत्तीस लगाने से जो सम्वत् बनाया—उसमें 'रामचरित मानस' के कथा का ग्रारम्भ किया जिसमें मोह रूपी रावण इसके ग्राघात से न बच सके।

नवमी तिथि से शक्ति की भावना को सम्मान मिलता है। मंगलवार तुलसी के परम इष्ट ग्रौर मानस के प्रेरणास्रोत पवनपुत्र हनुमान का दिवस है। चैत्र मास से भगवान राम का पुण्य-स्मरण होता है—इन तीनों के उपासक होने के कारण, उन्होंने इसी तिथि को 'मानस' का श्रीगणेश किया। ग्रयोध्या जैसी पवित्र नगरी के उपयुक्त स्थान को पाकर तुलसी ने 'मानस' का सृजनारम्भ किया।

'मानस' का रचना-क्रम:

"रामलला नहछू' (सन् १५७१-७२) तथा 'जानकी मंगल' (सन् १५७२-७३) ने एक ग्रोर 'मानस' के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया ग्रौर दूसरी ग्रोर कवि के ग्रात्म-विश्वास को जाग्रत किया। 'मानस' का पूर्वार्द्ध कविता छटा से परिपूर्ण है। उत्तरार्द्ध में धर्म, दर्शन तथा भक्ति का प्राधान्य है। एक कवि-धर्म का ध्वजा वाहक है, तो दूसरा मोक्ष धर्म का पुरस्कर्त्ता। इससे सर्वथा स्पष्ट है कि 'मानस' एक ही प्रयास की रचना न होकर ग्रनेक प्रयासों की प्रसूति है। विद्वानों का ग्रभिमत है कि सम्पूर्ण ग्रयोध्याकांड सबसे पहले लिखा गया, उसके पश्चात् बालकाण्ड एवं ग्रंतिम पांच सोपान। मानसरोवर का रूपक, चार घाटों की संयोजना ग्रौर वक्ता-श्रोताग्रों के रूप में चार युग्मों की व्यवस्था कवि की परवर्ती कल्पना है। शुरु में तो कवि स्वयं ही एक मेव वक्ता था। बाद में प्रस्तावना रूप में ग्रंत में उसने समस्त ग्रन्थ को दृष्टि में रखकर इन रूपकों की निबंधना की थी।

'मानस' का समाप्ति-काल:

'मानस' की समाप्ति कब हुई ?—इसी बात से 'मानस चतुश्शती' की ग्रायोजन-ग्रवधि का भी प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। यह कहना कठिन है कि 'मानस'—लेखन की परिसमाप्ति कब हुई ? तुलसी ने उसकी समाप्ति की किसी तिथि की कोई चर्चा नहीं की है। इस सन्दर्भ में कोई प्रामाणिक ग्राधार भी ग्रनुपलब्ध है। विभिन्न मतवाद मिलते हैं।

वेणीमाधवदास (मृत्यु-सम्वत् १६९९) द्वारा लिखित 'मूल गोसाईं चरित' (रचना-काल सम्वत् १६८७: प्रकाशन-काल सन् १९२५) के ग्रनुसार मंगलवार, मार्गशीर्ष शुक्ल ५ (राम-विवाह की तिथि) सम्वत् १६३३ में 'मानस' की समाप्ति हुई। ग्रतः उसके लेखन में कुल दो वर्ष, सात महीने ग्रौर छब्बीस दिन लगे थे :—

दुइ बत्सर सातेक मास परे। दिन छब्बिस मांझ सोझ सो पूरे करे।
तेंतीस को सम्वत् ग्रौ मगसर। सुम द्यौस सुराय [illegible] परं ।।

तुलसी के समकालीन अविनाश राय द्वारा लिखित 'तुलसी प्रकास' (रचनाकाल : सम्वत् १६७७, प्रकाशन-काल : सन् १६५३-५४) में 'मानस' की समाप्ति तिथि सम्वत् १६३५ की जेठ बदी तीज दी गयी है:

गगन व्योम सरचंद सक असित जेठ सुभ मास ।
रामचरित भृगु तीज दिन पूरयो तुलसीदास ॥

उपरिलिखित दोनों कृतियां अप्रमाणिक सिद्ध हो चुकी हैं ।

डा० भगीरथ मिश्र ने मानस के लेखन तथा उसके परिमार्जन में पन्द्रह वर्ष का समय माना है । डा० उदयभानुसिंह की सम्मति है कि उसकी रचना में लगभग पांच वर्ष का समय लगा होगा । उसके बाद भी काट-छांट और संशोधन-परिवर्धन का क्रम चलता रहा होगा । सम्वत् १६४२ तक 'पार्वती मंगल' की रचना के पूर्व उसे अंतिम रूप प्राप्त हो गया होगा । तुलसी ने तिथि-निर्देश अंश के पूर्व ७ श्लोकों, १० सोरठों ४४ सोरठों, ४४ दोहों, १ छंद और ३२८ अर्द्धालियों की रचना कर ली थी । इस आधार पर सीताराम चतुर्वेदी ने लिखा हैं कि उन्होंने इतने वेग से लिखना आरम्भ किया था कि उनके समान समर्थ कवि-कोविद तथा रामभक्त के लिए सोलह दिन में मानस पूर्ण कर डालना कोई कठिन काम नहीं था । परन्तु यह मत समीचीन प्रतीत नहीं होता । वस्तुतः तुलसी के 'मानस'—लेखन को लगभग तीन वर्ष (सन् १५७४-१५७७) लगे और जनश्रुति के आधार पर वे उसका पन्द्रह वर्ष (सन् १५६२) तक संशोधन-परिष्कार करते रहे ।

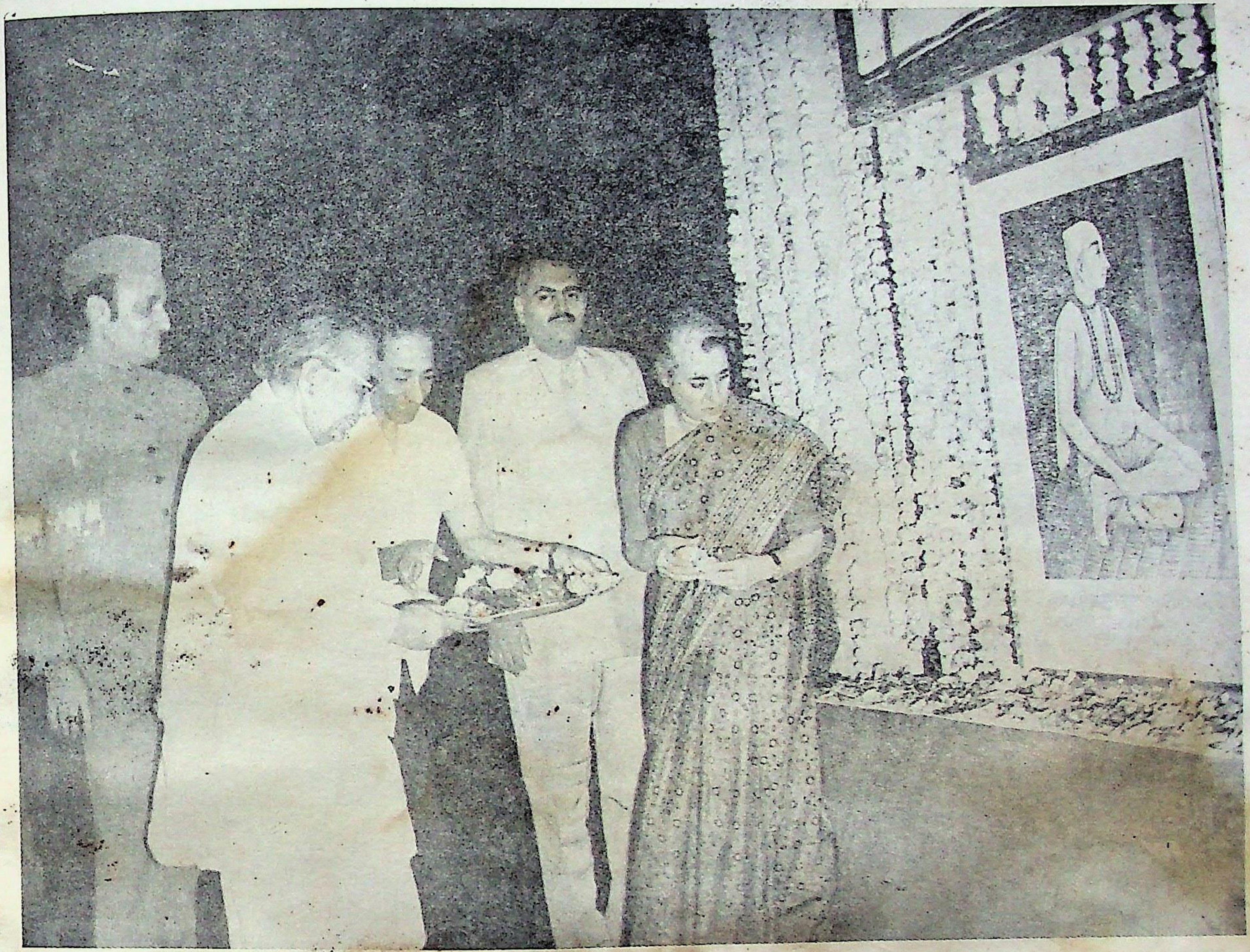
'मानस चतुश्शती' की परिकल्पना :

यदि प्रादेशिकता तथा क्षेत्रीयता का आक्षेप न लगाया जाएं तो 'मानस चतुश्शती' की परिकल्पना का मूल श्रेय मध्यप्रदेश को उसी प्रकार है जिस प्रकार तुलसी को अपना कवि बनाने का (चित्रकूट : जिसका अधिकांश भाग मध्यप्रदेश में आता है ।) 'रामवन' (जिला सतना : मध्यप्रदेश) के संस्थापक बाबू शारदा प्रसाद ने सर्वप्रथम अपने 'मानस-संघ' की मुख-पत्रिका 'मानस मणि' के नवम्बर, सन् १६६७ के अंक में 'मामस चतुश्शती' मनाने का विचार हिन्दी-जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया था । इसकी पुष्टि 'नागरी-पत्रिका' (अगस्त, १६६६) ने भी की है । इसके पश्चात् 'मानस मणि' के फरवरी, १६६८ अंक में उन्होंने रामवन की पंचवर्षीय योजना का सर्वतोमुखी प्रारूप प्रस्तुत किया जिसमें अनेक प्रावधान तथा सुझाव थे । बाबू शारदा प्रसाद (जन्म १० अक्टूबर सन् १८६६) को बिन्ध्य प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन रीवा ने सन् १६६७ में एक 'अभिनन्दन ग्रन्थ' भेंट किया था । सन् १६३६ में 'रामवन' की भूमि प्राप्त हुई थी । सन् १६४० में हनुमान-मन्दिर बना । सन् १६४१ में मासिक पत्रिका 'मानस-मणि' का प्रकाशनारम्भ हुआ था । रामवन के मुख्य आकर्षण तुलसी-संग्रहालय, तुलसी-प्रतिमा, हनुमान-मूर्ति, तुलसी-मन्दिर आदि हैं । तुलसी-संग्रहालय में एक हजार हस्तलिखित और सात हजार मुद्रित ग्रन्थ हैं ।

मानस-चतुश्शती वर्ष में रामवन 'तुलसी-तीर्थ' बन गया । यहां 'रामचरितमानस' को मूर्त स्वरूप प्रदान कर दिया गया है । यह मानस चतुश्शती का राष्ट्रीय तीर्थ है ।

मानस चतुश्शती (राम नवमी, १ अप्रैल, सन् १६७१) के ठीक सात वर्ष पूर्व (रामनवमी, सम्वत् २०२४) मानस-मराल स्व० पं० शम्भुनारायण चौबे के 'मानस-अनुशीलन' की भूमिका में रायकृष्णदास ने मानस-चतुश्शती की योजना को विशद् रूप में प्रस्तुत किया था जिसे काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने सोत्साह-सोल्लास स्वीकार करके विकसित-सम्वर्द्धित किया । 'नागरी-पत्रिका' के अगस्त, १६६८ के अंक के सम्पादकीय में भी इस उत्सव की ओर सर्व साधारण का ध्यान आकृष्ट किया गया था । परन्तु मानस-चतुर्थ-शती को सर्वाधिक लोकप्रिय और सर्व व्यापक बनाने का श्रेय 'धर्मयुग' को है उसमें प्रकाशित डा० शिवप्रसाद सिंह के लेख और बाद में 'धर्मयुग' में प्रकाशित अनेक पत्रों ने इस महत्व पूर्ण उत्सव तथा सारगभित आयोजन की ओर व्यापक रूप में जनता-जनार्दन का ध्यान खींचा ।

विश्व के महानतम कवि तुलसी के मानस की चतुश्शती अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मनाने के लिए काशी नागरी प्रचारिणी सभा के तत्वावधान में सन् १६६६ से ठोस प्रयत्न शुरू हुए । संस्था की मुख पत्रिका 'नागरी पत्रिका' ने 'तुलसी - मानस-चतुश्शती महोत्सव - योजना - विशेषांक' (अगस्त, १६६६) प्रकाशित किया जिसमें देश के मूर्धन्य साहित्यकारों, राजनेताओं तथा अग्रणी व्यक्तियों के सुझाव प्रकाशित हुए ।



मानस चतुःशती शुभारंभ समारोह में प्रधान मंत्री तुलसीदास जी को माल्यार्पण करते हुए

देश-विदेश में हुए समारोहों की रिपोर्ट

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में मानस चतुश्शती समारोह के आयोजन की आवश्यकता का अनुभव सर्व प्रथम नगर छात्र निकाय संघ के छात्र पदाधिकारियों ने किया। नगर छात्र निकाय के वरिष्ठ संरक्षक के रूप में मैं इसकी आवश्यकता का अनुभव कर रहा था और इस प्रकार उत्साही छात्र पदाधिकारियों ने मेरे मन की बात स्वयं कह दी।

अतः बीज रूप में नगर छात्र निकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के तत्वावधान में आयोजन की रूप-रेखा बनी जिसका श्रेय सर्वश्री मु० सलाहुद्दीन खां (पच्छिमी निकाय), अशोक कुमार पटेल (पूर्वी निकाय) और लालबहादुर सिंह (दक्षिणी निकाय), को है। विश्वविद्यालय के कुलपति डा० कालूलाल श्रीमाली ने इस कार्य के लिए सहर्ष अपनी अनुमति प्रदान कर दी। आयोजन की व्यापक चर्चा आरम्भ हुई और छात्र अधिष्ठाता डा० के० पी० सिंह (वरिष्ठ प्रोफेसर गणित विभाग) ने जो छात्र संघ के स्पीकर भी हैं, मेरे सम्मुख यह सुझाव रखा कि इस आयोजन में छात्र संघ को भी क्यों न सम्मिलित कर लिया जाय, क्योंकि छात्र संघ के पदाधिकारी भी यह आयोजन करना चाहते हैं। परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय परिवार के प्रत्येक वर्ग के प्रतिनिधियों की साझेदारी में एक कार्यसमिति का गठन हुआ जिसके संरक्षक कुलाधिकारी डा० विभूतिनारायण सिंह (भू० पू० काशी नरेश) एवं कुलपति डा० कालूलाल श्रीमाली हैं। समिति के सदस्यों के आग्रह पर विश्वविद्यालय के वरिष्ठ प्रो० डा० रामलोचन सिंह (अध्यक्ष, भूगोल विभाग) ने समिति का अध्यक्ष बनना स्वीकार किया।

कार्यक्रम की रूप रेखा स्पष्ट करते हुए एक अनुरोध पत्र कार्यकारिणी के सदस्यों एवं विशिष्ठ नागरिकों के नाम धन संग्रह हेतु प्रचारित किया गया जिसका अनुकूल परिणाम हुआ। चित्रकूट रामायण मेले में एक शिष्ट मण्डल विश्वविद्यालय की ओर से गया। इस प्रकार कई चक्र में आयोजन को मनाने का संकल्प लिया गया। प्रथम चक्र का आरंभ प्रसिद्ध कथावाचक व्यास पं० रामकिंकर की कथा से हुआ। इस चक्र में काशी के प्रसिद्ध व्यासों की कथाएं हुईं जिन्हें लोगों ने अत्यधिक पसन्द किया।

दूसरे चक्र का महत्वपूर्ण आयोजन साहित्यिक संगोष्ठियों से प्रारम्भ हुआ जिसके निर्देशक डा० विजयपाल सिंह (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग) रहे। इस अवसर पर समारोह समिति की ओर से एक स्मारिका का प्रकाशन किया गया और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय समाचार का 'मानस चतुश्शती विशेषांक' भी इसी अवसर पर प्रकाशित हुआ। इस अवसर पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्र एवं छात्राओं ने काशी के कलाप्रेमी नागरिकों की सहायता से दो दिन तक सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किए जिनमें से अधिकांश 'मानस' पर आधारित थे। पन्द्रह हजार से अधिक दर्शकों ने इन सांस्कृतिक कार्यक्रमों को प्रतिदिन देखा। एक दिन दर्शकों में उत्तरप्रदेश के राज्यपाल महामहिम अकबर अली खां भी थे।

ऐतिहासिक संगोष्ठियां ७, ८, ९, एव १० जनवरी को हुई। ७ जनवरी को समारोह का उद्घाटन प्रातः डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने किया और समारोह की अध्यक्षता सर्वोदयी नेता श्री जयप्रकाश नारायण ने की। इस अवसर पर समारोह समिति द्वारा आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डा० उदयभानु सिंह, डा० नामवर सिंह, शंकर डा० राजू नायडू, डा० मलिक मोहम्मद, डा० जी० सुन्दर रेड्डी, डा० फादर कामिल बुल्के एवं अमृतलाल नागर को ताम्रपत्र प्रदान कर सम्मानित किया गया। उसी दिन अपराह्न में पटना विश्वविद्यालय के उपकुलपति प्रो० देवेन्द्र-तिवारी और डा० नगेन्द्र ने भाग लिया।

आठ जनवरी की गोष्ठी का विषय था "कथावाचकों की राजनीति और मानस के मूल्यांकन की समस्याएं" जिसकी प्रातः तथा अपराह्न में दो बैठक हुई। प्रातः कालीन गोष्ठी की अध्यक्षता डा० नगेन्द्र ने की और विषय प्रवर्तन डा० विद्या निवास मिश्र ने किया। विचार विमर्श में डा० भोलाशंकर व्यास, डा० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, श्री हीरा सिंह, डा० शंकर राजू नायडू, डा० जगदीश गुप्त, डा० श्यामसुन्दर शुक्ल, डा०



काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के मानस चतुःशती समारोह (जनवरी १९७४) में भाषण करते हुए डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

नाथ शर्मा की अध्यक्षता में 'भारतीय जीवन का वर्तमान सामाजिक सन्दर्भ और मानस मूल्यों की सार्थकता' विषय पर विचारगोष्ठी हुई, जिसमें विषय प्रवर्तन का कार्य हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० बच्चन सिंह ने किया। [illegible] विमर्श में डा० शिवप्रसाद सिंह, डा० ज्ञानवती त्रिवेदी, हरिकृष्ण अवस्थी, डा० [illegible]नाथ

सूर्यनारायण द्विवेदी, डा० राजेन्द्र उपाध्याय, डा० महेन्द्रनाथ दुबे और नरेन्द्र नीरव ने भाग लिया। अपराह्न की गोष्ठी की अध्यक्षता आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने की और विषय प्रवर्तन का कार्य डा० उदयभानु सिंह ने किया। विचारविमर्श में आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, पं० करुणापति त्रिपाठी, डा० रामनरेश वर्मा, डा० राजपति दीक्षित,

डा० शम्भूनाथ सिंह एवं श्री मुनिलाल नायक ने भाग लिया ।

९ जनवरी की गोष्ठी का विषय था "युवापीढ़ी का मानस विराग और मानस चतुश्शती की प्रासंगिकता"। प्रातः कालीन गोष्ठी की अध्यक्षता डा० नामवर सिंह ने की और विषय प्रवर्तन डा० विजय मोहनसिंह ने तथा संचालन का कार्य ठाकुर प्रसाद सिंह ने किया। विचार विमर्श में डा० रघुवंश, डा० शम्भूनाथ त्रिपाठी, डा० केदारनाथ सिंह, डा० शिवप्रसाद सिंह, श्री धर्मचन्द्र जैन, डा० के० पी० सिंह और डा० बब्बन त्रिपाठी ने भाग लिया। अपराह्न की गोष्ठी की अध्यक्षता डा० रमेश कुन्तल मेघ ने की और विषय प्रवर्तन का कार्य पं० विष्णु कान्त शास्त्री ने किया। विचार विमर्श में डा० मलिक मोहम्मद, डा० प्रेमस्वरूप गुप्त, श्री अवधेशनारायण त्रिपाठी, डा० बच्चन सिंह, नरेन्द्र नीरव, डा० भगवतीप्रसाद सिंह, डा० ब्रजविलास, डा० विश्वनाथ, रणजीत सिंह, श्री आनन्द जी, कु० उर्मिला शाह, डा० शम्भूनाथ पाण्डेय एवं डा० महेन्द्रनाथ दुबे ने भाग लिया।

दिनांक १० जनवरी को समापन गोष्ठी की अध्यक्षता डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने की और डा० हरिवंशलाल शर्मा मुख्य अतिथि रहे। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने समापन भाषण किया तथा कुलपति के सलाहकार श्री एल० ओ० जोशी तथा कुलपति डा० कालूलाल श्रीमाली ने भाषण के साथ ही कुछ महत्वपूर्ण घोषणाएं की जिनमें "तुलसी शोध संस्थान" की स्थापना प्रमुख थी। अंत में समिति के अध्यक्ष डा० रामलोचन सिंह ने विस्तारपूर्वक योजनाओं पर प्रकाश डाला।

उक्त घोषणा के अनुसार रामनवमी के दिन काशी हिन्दूविश्वविद्यालय स्थित मालवीय भवन में विधिवत "तुलसी शोध संस्थान" की स्थापना हुई है, जिसको स्वरूप प्रदान करने के लिए प्रयत्न किए जा रहे हैं। इसी क्रम में आयोजित चित्र प्रदर्शनी का उद्घाटन २६ अप्रैल ७४ को मालवीय भवन में कुलपति डा० कालूलाल श्रीमाली द्वारा किया गया। मानस सम्बन्धी प्रदर्शनी उत्तरप्रदेश सरकार की सहायता से सम्भव हो सकी।



श्री अशोक कुमार पटल, अध्यक्ष, पूर्वी नगर छात्र संघ मुख्य अतिथि श्री जयप्रकाश जी को स्मारिका समर्पित करते हुए।

रामलोचन सिंह

—त्रिभुवन सिंह
संयोजक

मानसतीर्थ रामवन

मानस के पाठों के प्रचार के लिए १९३९ में जन्माष्टमी ५ सितम्बर को मानस संघ स्थापित हुआ। इसने नवम्बर १९४१ से 'मानसमणि' मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया।

रामवन के तुलसी संग्रहालय में ४०० दिन तक मानस चतुश्शती समारोह संचालित हुआ। इसका उद्घाटन देश के प्रसिद्ध मानस व्यास श्रीरामकिंकर उपाध्याय ने किया था। सभा के अध्यक्ष थे बांधवेश महाराज साहब रीवां श्री मार्तण्डसिंह (संसद सदस्य)। समारोह अवधि में—

१ नित्य नई झांकी तुलसी संकीर्तन भवन में सजाई गई।

२ नित्य भगवान राम, मानस ग्रन्थ तथा गोस्वामी जी की पूजा का क्रम खूब चला।

३ इस अवधि में मानस के अखण्ड पाठ नित्य के एक के अतिरिक्त ३२३ हुए, नवाह ४३२ और मासिक १९९। सुन्दरकाण्ड के ४३२० पाठ हुए। अन्य पाठादि भी बड़ी संख्या में हुए।

४ श्रद्धांजलियां २७३ संग्रह हुई। अभी १२७ और संग्रह करने का विचार है।

५ अशोकाष्टमी सं० २०३० ता० १०-४-७३ को रामवन में एक खुली जीप की सुन्दर सजावट करके उस पर गोस्वामी तुलसीदास की मनुष्याकार मूर्ति रखी गई। इसका सतना में भव्य जलूस निकाला गया जो कई घंटे पूरे नगर में घूमा। रामनवमी ११-४-७३ को प्रातः जन समूह इस मूर्ति के साथ सतना से सुन्दरकाण्ड का गायन करते हुए चला। पूरे दस मील की पद यात्रा करके यह रामवन पहुंचा।

अपराह्न में सागर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष मानस के सुप्रसिद्ध विद्वान डा० भगीरथ मिश्र आये। संकीर्तन भवन में ही उनकी तथा रीवां की श्रीमती ज्ञानवती अवस्थी की कथाएं हुई।

सतना के जलूस और वहां से रामवन की पदयात्रा की व्यवस्था प्रेम रामायण समाज सतना ने की थी।

६ रामवन के बसन्त पंचमी के मेले को (८,९,१०, फरवरी १९७४) इस वर्ष मानस मेला का रूप दिया गया। विविध स्थानों में १० मंच सजाये गये। इनका संचालन विविध मानस समाजों तथा ग्रामों ने किया। इनमें बराबर मानस गायन होता रहा। तुलसी संकीर्तन भवन में श्री रामरक्षित, पं० भैरवप्रसाद द्विवेदी, सुश्री पंछी देवी, श्री रामसुपाल भट्ट आदि की कथाएं हुई।

डगनियां (विलासपुर) के मानस प्रेमियों ने तीन रात रामलीला की।

७ समारोह की अवधि में रामवन में सभाएं हुईं। एक गोष्ठी आयोजित की गई विविध व्यासों की कथा ७५ दिन चली।

८ समारोह अवधि में (१) साहित्य वाचस्पति डा० बलदेव प्रसाद मिश्र (२) आचार्य श्री परशुराम चतुर्वेदी (३) डा० कामिल बुल्के (४) डा० प्रेमनारायण शुक्ल (५) डा० कन्हैया लाल सहल (६) डा० रंजन (७) ड० रामलालसिंह (८) श्री कालिका प्रसाद दीक्षित (९) व्योहार राजेन्द्रसिंह आदि महानुभावों ने भी रामवन पधारने की कृपा की।

९ हाट पीपल्या जिला देवास के डा० के० एम० पाण्डेय ने राम राम शब्दों से बने अक्षरों से पूरा रामचरित मानस लिखा है। इस अनुपम रचना की प्रदर्शनी रामवन में ता० २६ से २८ मई १९७३ तक हुई।

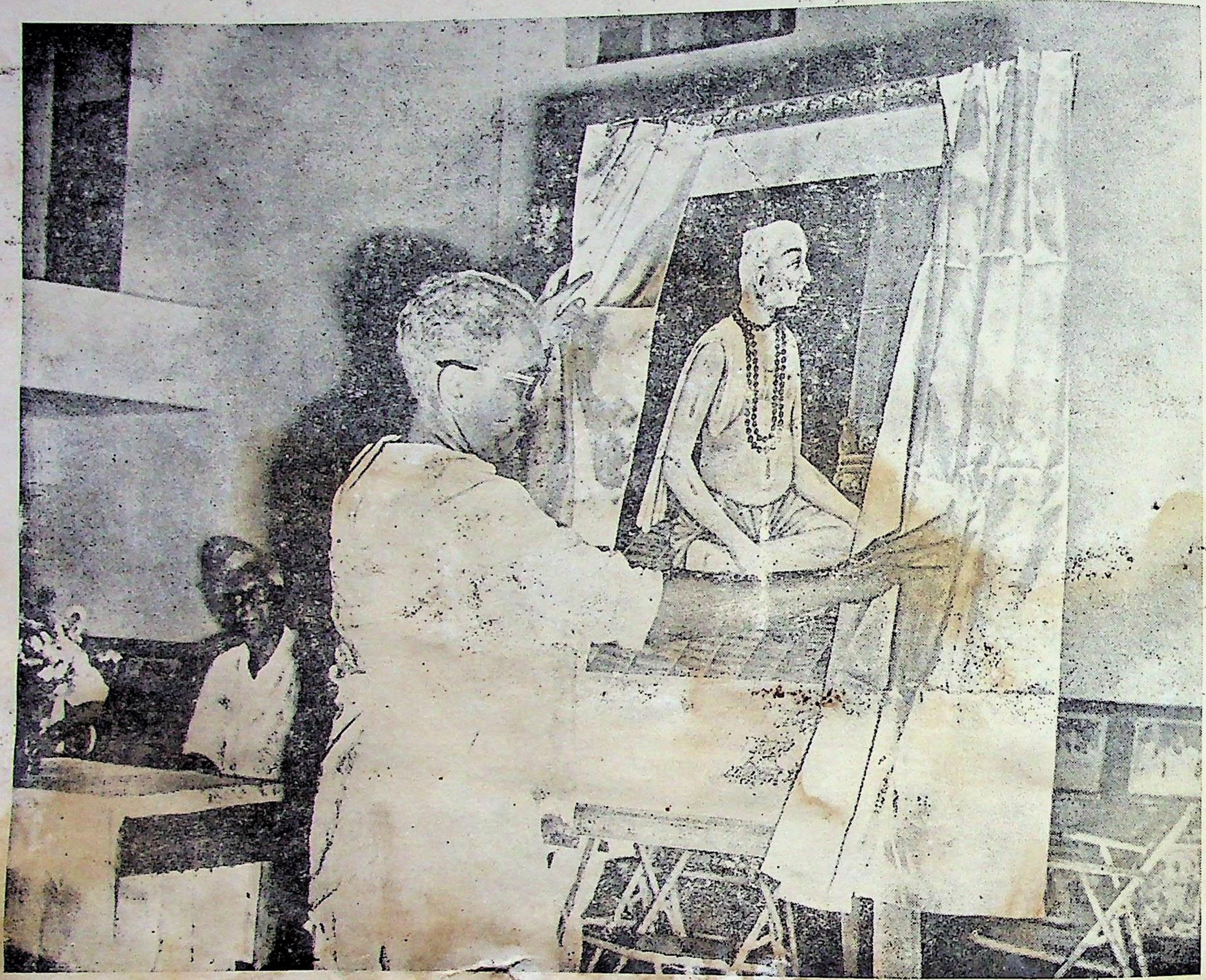
१० श्री जानकी नवमी को उनका सहस्त्रार्चन हुआ।

११ अक्षय नवमी (४-११-७३) के समारोह का उद्घाटन परमार्थ आश्रम हरिद्वार के अध्यक्ष श्री स्वामी धर्मानन्द सरस्वती ने किया।

१२ पौष शुक्ल ९ (ता० २-१-७४) के समारोह का उद्घाटन अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरुशंकराचार्य स्वामी श्री शान्तानन्द ने किया। उन्होंने तुलसी मंदिर का उद्घाटन भी किया।

यह रामनवमी विक्रम सं० २०३१ मानस सं० ४०१ (ता० १-४-७४) को पूरा हुआ। उसी दिन मानस लेखन चतुश्शती समारोह यहां प्रारम्भ हो गया जो विवाह पंचमी २०३३ (ता० २६-११-७६) तक चलेगा।

—शारदा प्रसाद
(संयोजक)



केरल के गृहमंत्री श्री करुणाकरन केरल चतुःशती समारोह म[illegible]री तुलसीदास के चित्र को माल्यार्पण कर रहे हैं।

केरल

रामचरितमानस चतुःशती समारोह की केरल राज्य समिति के संरक्षक केरल के राज्यपाल महामहिम श्री एन० एन० वांचु हैं और समिति के कार्यकारी अध्यक्ष केरल के गृह-मंत्री श्री के० करुणाकरन। केरल के विविध क्षेत्रों के गण्यमान्य लगभग पचास व्यक्ति समिति के सदस्य हैं। केरल समिति का प्रमुख केन्द्र कालिकट है।

रामचरितमानस चतुःशती की केरल राज्य-समिति की ओर से आयोजित भव्य समारोह के कार्य-क्रम का उद्घाटन कालिकट नगर के गांधीगृह में २५-५-७३ को सम्पन्न हुआ। एक विराट सम्मेलन में गोस्वामी तुलसीदास के वृहद चित्र का अनावरण केरल के गृह-मंत्री माननीय श्री करुणाकरन ने किया। रामचरितमानस की महानता के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए अनेक वक्ताओं ने रामचरितमानस को भारतीय साहित्य की ही नहीं, बल्कि विश्वसाहित्य की महान संपत्ति घोषित किया। उद्घाटन सम्मेलन के अध्यक्ष प्रसिद्ध मलयालम दैनिक 'मातृभूमि' के प्रबन्ध संपादक श्री वी० एम० नायर थे।

श्री वी० एम० नायर ने अपने अध्यक्षीय भाषण में गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय-शक्ति पर प्रकाश डालते हुए कहा—"रामचरितमानस में विभिन्न धार्मिक मतावलंबियों के विचारों में, संस्कृतियों तथा भाषाओं में समन्वय की जो चेष्टा दिखाई पड़ती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। आधुनिक युग में गांधीजी तुलसीदास की इस समन्वय भावना से बहुत अधिक प्रभावित हुए थे।"

कालिकट विश्वविद्यालय के प्रत्युप कुलपति प्रो० के माधव मेनोन ने गोस्वामी तुलसीदास को भारतीय भक्ति परंपरा के सबसे शक्तिशाली प्रवक्ता एवं भक्ति साहित्य की महत्वपूर्ण कड़ी माना। उक्त सम्मेलन में मलयालम के प्रसिद्ध आलोचक प्रो० सुकुमार अषीकोड़ ने तुलसीदास को भावुक कवि के साथ-साथ निर्माणकारी व्यक्तित्व के अधिकारी भी घोषित किया और उनके इस निर्माणकारी व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला। मलयालम के प्रसिद्ध कवि श्री० पी० कुंजिरामन नायर ने अपने भाषण में तुलसीदास को मनुष्यता एवं मातृभूमि की प्रशंसा करने वाले अद्वितीय भक्त कवि सिद्ध किया।

सम्मेलन में कालिकट विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग के छात्र-छात्राओं ने तुलसीदास के चुने हुए पदों का गायन भी प्रस्तुत किया। समारोह के अंत में 'युगाभात' के संपादक श्री रवि वर्मा ने कृतज्ञता प्रकट की।

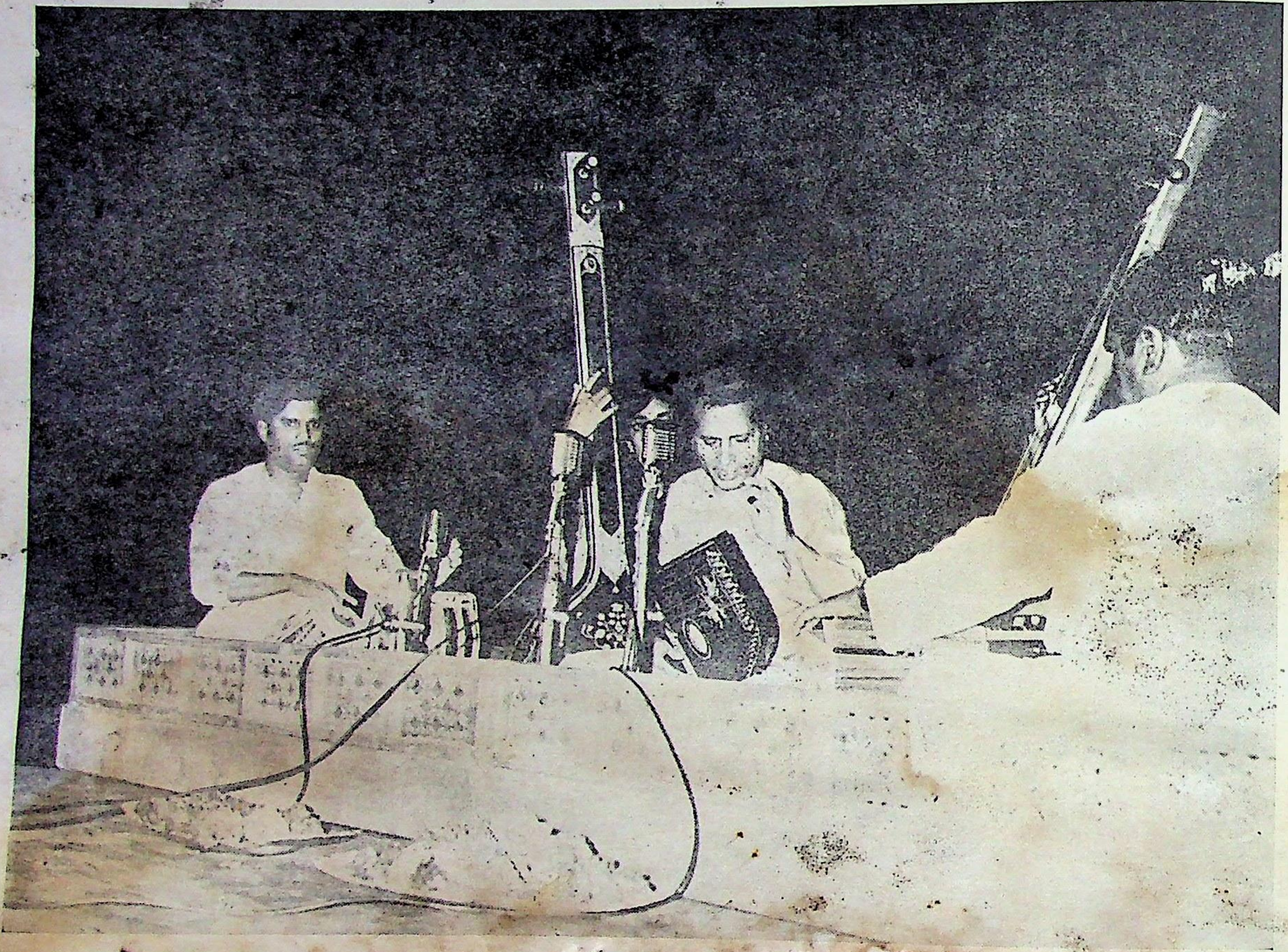
उद्घाटन कार्यक्रम के अवसर पर केरल की प्रसिद्ध दैनिक पत्रिकाओं—"मातृभूमि," और "मनोरमा"—में तुलसी के संबन्ध में विशेष लेख प्रकाशित किये गये। समिति की प्रेरणा से अन्य केन्द्रों में भी चतुःशती समारोह आयोजित हुए। इस संदर्भ में कालिकट विश्वविद्यालय ने 'तुलसीदास और उनका संदेश' शीर्षक विषय पर विद्यार्थियों के लिए एक निबन्ध-प्रतियोगिता चलायी और विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किये गए। समिति की ओर से मलयालम में 'तुलसीदास और उनका संदेश' शीर्षक एक पुस्तक तैयार की गयी है।

—मलिक मोहम्मद

(संयोजक)



भाषण करते हुए डा० कर्ण सिंह



२४ मार्च १९७३ से लेकर १ अप्रे चतुःशती समारोह में ... शती समारोह में पं० जसराज का गायन

गुजरात

सितम्बर सन् १९७२ में केन्द्रीय समिति ने गुजरात राज्य रामचरितमानस चतुःशती समारोह समिति का निर्माण किया। इस समिति के संरक्षक गुजरात के तत्कालीन राज्यपाल माननीय श्री श्रीमन्नारायणजी मनोनीत किये गये। समिति के अध्यक्ष माननीय श्री घनश्याम भाई ओझा, कार्यकारी अध्यक्ष मा० श्री रतुभाई अदाणी तथा संयोजक श्री जेठालाल जोषी (मंत्री-संचालक गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति) मनोनीत किये गये।

संयोजक ने केन्द्रीय समिति की सूचनानुसार कार्यक्रम शुरू किया। गुजरात भर में अधिकांश महाविद्यालयों तथा हाई स्कूलों में रामचरितमानस पर व्याख्यान, प्रवचन, कवितापाठ के आयोजन सम्पन्न हुए। केन्द्रीय समिति से प्राप्त तुलसीदासजी के चित्र तथा करीब दो हजार पोस्टर गुजरात-भर के अधिकारी व्यक्तियों तथा स्थानों पर भेजे गये। गुजरात के कई स्थानों पर भाषणादि की व्यवस्था की गयी।

गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने बड़े परिश्रम से श्रद्धापूर्वक समिति की मुख पत्रिका "राष्ट्रवीणा" का रामचरितमानस चतुःशती विशेषांक प्रकाशित किया। विद्वान पाठकों की राय में यह विशेषांक अच्छा बन गया। इस अंक में देश के उच्चकोटि के ४०-५० विद्वानों के पठनीय लेख संग्रहीत हैं। स्वामी श्री कृष्णानंदजी महाराज के प्रयत्न से रामचरितमानस की पुस्तकें दानस्वरूप बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त हुई और उनका वितरण बाहर के राष्ट्रों में हुआ।

—जेठालाल जोशी
(संयोजक)

भरतपुर (राजस्थान)

श्री हिन्दी साहित्य समिति द्वारा मानस चतुश्शती समारोह दो चरणों में मनाया गया। प्रथम समारोह त्रिदिसीय था। यह १ जुलाई १९७३ से ३ जुलाई तक चला। तीनों दिन मुख्य वक्ता थे दास रामायणी (कश्मीरी बाबा)। और भी कई विद्वानों ने तुलसी और मानस पर अपने विचार प्रकट किये। दूसरा कार्यक्रम तुलसी जयन्ती के अवसर पर रविवार ५ अगस्त, १९७३ को मनाया गया। उस दिन क्षेत्र के विद्वानों ने बड़ी संख्या में भाग लिया था। इस अवसर पर कवि सम्मेलन का भी आयोजन किया गया था। दोनों बार के आयोजनों में नागरिकों की उपस्थिति अच्छी थी।

—मोहन लाल मधुकर
(संयोजक)

सिन्ध-राजस्थान राष्ट्र भाषा समिति, जयपुर

सन् १९३८ में सिन्ध-राष्ट्र भाषा प्रचार समिति की स्थापना सिन्ध में हुई थी। १९४७ के बाद से इसका नाम सिन्ध-राजस्थान राष्ट्र भाषा प्रचार समिति है।

मानस चतुःशती समिति से प्राप्त गोस्वामी तुलसीदास जी के चित्र तथा पोस्टर प्रत्येक केन्द्र को भेज दिये गये थे जहां तुलसी जयन्ती तथा राम नवमी पर इनका प्रदर्शन करने के पश्चात् रामचरित मानस पर विविध विद्वानों के भाषण हुए। इस संस्था द्वारा प्रत्येक १४ सितम्बर को हिन्दी दिवस मनाया जाता है। गत हिन्दी दिवस पर जयपुर में तुलसीदास तथा मानस की सराहना तथा श्रद्धांजलि के रूप में कविगोष्ठी हुई। जयपुर की विभिन्न पाठशालाओं में तुलसीदास के चित्र वितरित किये गये तथा गलियों व सड़कों पर पोस्टरों के चिपकाने का अभियान किया गया।

इस संस्था द्वारा संचालित बालमन्दिर के छात्रों द्वारा गत १४ सितम्बर, १९७३ को हिन्दी दिवस के आयोजन के समय डा० राम कुमार वर्मा द्वारा लिखित 'जय तुलसीदास' एकांकी नाटक प्रस्तुत किया गया, जो अत्यन्त सफल रहा।

—कृष्णलाल वर्मा
(संयोजक)

दिल्ली

दिल्ली में रामचरित मानस चतुः शती समारोह अपनी विशालता तथा सांस्कृतिक वैविध्य के लिए स्मरणीय रहेगा। इस समारोह में सभी कुछ था। पहले दिन बुधवार, ११ अप्रैल को राजनेताओं ने तुलसीदास को श्रद्धांजलियां अर्पित कीं। दूसरे दिन महाकवियत्री श्रीमती महादेवी वर्मा ने सांस्कृतिक समारोहों का अपने उद्बोधित भाषण से शुभारम्भ किया। राजधानी में पांच दिन रामचरित्र मानस पर आधारित संगीत और नृत्य के वे कार्यक्रम प्रस्तुत हुए जैसे पहले कभी नहीं हुए थे। देश के चोटी के संगीतज्ञ श्री कुमार गंधर्व ने राम चरित मानस के अंशों को शास्त्रीय संगीत की मधुर ध्वनि में सुनाकर श्रोताओं को मुग्ध कर दिया, तो पंडित जसराज, श्री जितेन्द्र अभिशेकी और श्रीमती सुलोचना यजुर्वेदी ने भी अधिक व्यवस्थित श्रोतासमूह को अपने गायनों से आनन्द-विभोर किया। देश की तीन प्रसिद्ध नर्तकियों—श्रीमती सोनल मानसिंह, कुमारी उमा शर्मा और श्रीमती संयुक्ता पाणिग्रही ने रामचरितमानस के आधार पर अपने नृत्य प्रस्तुत किए।

समारोह के अन्तिम दिन रविवार १५ अप्रैल को साहित्य गोष्ठी भी हुई, जिसमें डा० फादर कामिल बुल्के, डा० बलदेवप्रसाद मिश्र और डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रामचरित मानस के आध्यात्मिक, नैतिक और साहित्यिक रूपों पर प्रकाश डाला। इन कार्यक्रमों के साथ रामचरित मानस के सम्बन्ध में एक प्रदर्शनी भी आयोजित की गई। इस प्रदर्शनी में रामचरित मानस की मूल कृतियों के कुछ पृष्ठ थे तथा राजापुर, अयोध्या, काशी आदि स्थलों पर तुलसीदास से सम्बन्धित स्थानों और स्मारकों के चित्र प्रदर्शित किए गए थे।

मुख्य समारोह विज्ञान भवन में हुआ था। सर्वप्रथम प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा राष्ट्रीय समिति के कार्यकारी अध्यक्ष श्री कमलापति त्रिपाठी ने पुष्पांजलि भेंट कर अपनी श्रद्धा व्यक्त की। इसके बाद राष्ट्रीय समिति के मंत्री श्री कृष्णचन्द्र पन्त ने स्वागत करते हुए राष्ट्रीय समिति के कार्य का विवरण दिया। उन्होंने बताया कि यूनेस्कों ने रामचरित मानस वर्ष मनाने का निर्णय किया है औ[illegible] चतुःशती स[illegible] में मानस समारोह मनाने के लिए बड़ा उत्साह है[illegible] सूचना दी कि भारत सरकार ने 'तुलसी सदन' स्थापित करने तथा रामचरितमानस के कुछ अंशों के प्रकाशन करने का निर्णय किया है।

श्री कृष्णचन्द्र पन्त के भाषण के पश्चात प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने समारोह का उद्घाटन किया।

समिति के कार्यकारी अध्यक्ष और उत्तर प्रदेश के तत्काकीन मुख्यमंत्री पं० कमला पति त्रिपाठी ने इस अवसर पर मानस के साहित्यिक और सांस्कृतिक महत्व पर मार्मिक भाषण दिया।

दूसरे दिन से लेकर १५ अप्रैल तक समारोह का कार्यक्षेत्र बदलकर राजधानी का विख्यात कमानी आडिटोरियम हो गया। प्रदर्शनी भी यहां लगा दी गई और प्रतिदिन छह बजे से लेकर साढ़े नौ बजे तक और अन्तिम दिन सायं चार बजे से लेकर रात साढ़े नौ बजे तक कमानी आडिटोरियम दर्शकों से भरा रहा।

डा० फादर कामिल बुल्के ने कहा कि अध्यात्म रामायण से रामचरितमानस इसलिए श्रेष्ठ है कि तुलसीदासजी सन्यास लेने को नहीं कहते अपितु 'परहित' पर जोर देते हैं।

दिल्ली प्रा० हि० सा० सम्मेलन

दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से चैत्र शुक्ल प्रतिप्रदा संवत २०३१ से लेकर रामनवमी यथानुसार २४ मार्च से लेकर १ अप्रैल तक रामचरित मानस चतुश्शती समारोह शहर के विभिन्न भागों में बड़े उत्साह से मनाया गया। प्रतिदिन प्रातःकाल चांदनी चौक स्थित नगर के प्राचीनतम मन्दिर गौरीशंकर मन्दिर के सभामण्डप में नवाह्नपारायण हुआ। उसी दिन वयोवृद्ध साहित्यकार स्व० सेठ गोविंद दास जी ने दिल्ली प्रदेश में मानस चतुःशती समारोह का शुभारम्भ गांधी मैदान में आयोजित एक विशाल सभा में किया। दिल्ली के नौ मोहल्लों में प्रति सायंकाल चतुःशती कार्यक्रम किए गए। इन समारोहों में प्र[illegible] मानसमर्मज्ञ पं० रामकिंकर उपाध्याय और पं० कपीन्द्रजी के [illegible] श्री मनमोहन पहाड़ी और उनकी मंडली ने मधुर कंठ से

रामचरितमानस के अंशों का पाठ व गायन किया ।

रामनवमी के दिन लालकिले से लेकर रामलीला मैदान तक एक बहुत बड़ी शोभा-यात्रा निकली जिसमें गोस्वामी तुलसीदासजी के चित्र के साथ-साथ श्रीराम, लक्ष्मण व जानकी के स्वरूप भी निकले । सायंकाल राष्ट्रीय समिति के उपसभापति स्व० श्री रामधारी सिंह दिनकर की अध्यक्षता में रामलीला मैदान में एक विशाल सभा हुई ।

दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के विभिन्न मण्डलों हिन्दी भवन, लक्ष्मीनारायण मन्दिर ने रामचरितमानस के सम्बन्ध में सभाएं, सांस्कृतिक कार्यक्रम व प्रवचनों की व्यवस्था की । दिल्ली प्रशासन की साहित्य कला परिषद ने दिल्ली राज्य समिति के सहयोग से दो दिन का चतुःशती समारोह आयोजित किया ।

सरदार पटेल विश्वविद्यालय

रामचरित मानस चतुःशती, राष्ट्रीय समिति के सुझाव पर सरदार पटेल विश्वविद्यालय (गुजरात) के स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग ने विभाग तथा विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कालेजों में तदनुसार मानस चतुःशती आयोजन-वर्ष में स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग में गोस्वामी जी से सम्बद्ध निम्नलिखित व्याख्यान आयोजित हुए :

विषय	वक्ता
तुलसीदास और गुजरात	डा० हसित बूच
लोक-नायक तुलसी	श्री जेठालाल जोशी
कवितावली का काव्य-सौन्दर्य	डा० दयाशंकर शुक्ल
विनयपत्रिका की अन्तः कथाएं	डा० रमणलाल गांधी

—प्रेम स्वरूप गुप्त
(संयोजक)

पूना

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणे की ओर से रामचरित मानस चतुःशती-समारोह के उपलक्ष्य में निम्नानुसार कार्यक्रमों का आयोजन किया गया :

विषय	व्याख्याता	दिनांक
श्रीरामचरितमानस	पं कृष्णलाल गौतम	१२-४-७३
,, ,,	डा० सज्जन राम केणी	१३-५-७३
तुलसी की भक्ति	डा० स० म० परलीकर	२२-७-७३
तुलसी के भरत	डा० न० चि० जोगलेकर	५-८-७३

'समिति' के संचालक श्री पं० मु० डांगरे की, पुणे आकाशवाणी-केन्द्र से, ८ जुलाई ७३ को गोस्वामी तुलसीदास जी के संबंध में, हिन्दी में एक वार्ता प्रसारित हुई । पुणे विद्यापीठ, अनेक महाविद्यालय तथा आकाशवाणी के पुणे-केन्द्र की ओर से भी रामचरित मानस-चतुःशती के उपलक्ष्य में कई कार्यक्रमों के आयोजन सम्पन्न हुए ।

—पंढरीनाथ मुकुन्द डांगरे
(संयोजक)

हिमाचल

राज्य स्तर पर दो बार आयोजन किए गए थे । एक तो महात्मा तुलसी दास के जन्म दिवस पर स्कूल के छात्रों की भाषण प्रतियोगिता तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया था और दूसरा दिनांक २६ व २७ मार्च, १९७४ को दो दिवसीय कार्यक्रम का आयोजन किया गया था । दिनांक २६ मार्च १९७४ को हिन्दी, उर्दू पहाड़ी, संस्कृत का संयुक्त कवि सम्मेलन करवाया गया ।

—हरिराम शर्मा
(संयोजक)



१ अप्रेल १९७३ को विज्ञान भवन में चतु:शती समारम्भ समारोह में गांधर्व महाविद्यालय द्वारा मंगलाचरण

राष्ट्रीय समिति द्वारा आयोजित समारोह

रामचरित मानस चतुःशती राष्ट्रीय समिति द्वारा चतुःशती समारोह का शुभारम्भ प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा संवत् २०२८ को रामनवमी के अवसर पर इंडियन मेडिकल एसोसिएशन हाल, इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली में किया गया। इस अवसर पर सभा की अध्यक्षता करते हुए पं० कमलापति त्रिपाठी ने रामचरित मानस के भारतीय जीवन में योगदान और विश्व साहित्य में तुलसीदास के स्थान पर प्रकाश डाला। प्रधानमंत्री ने गोस्वामी तुलसीदासजी के चित्र पर माल्यार्पण किया और उन्होंने भी भारत के जनजीवन में रामचरित मानस का जो महत्व है तथा जिस प्रकार यह ग्रन्थ भारत की कोटि-कोटि जनता को प्रेरणा देता आया है उसकी चर्चा की। समिति के मंत्री श्री सुधाकर पांण्डेय ने राष्ट्रीय समिति के कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की। सभापति डा० कर्णसिंह ने धन्यवाद दिया।

राष्ट्रीय समिति का अगला आयोजन तुलसी जयन्ती सं० २०२९ के अवसर पर राष्ट्रपति भवन के अशोक कक्ष में राष्ट्रपति श्री वराहगिरि वेंकट गिरि की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर [illegible] डॉ० कर्णसिंह ने मंगलाचरण किया तथा तुलसीदासजी के गौरव पर भाषण दिया। राष्ट्रपतिजी को राष्ट्रपति भवन में लगाने के लिए गोस्वामी तुलसीदासजी का एक तैल चित्र भेंट किया गया। महामंत्री श्री कृष्णचन्द्र पन्त ने राष्ट्रीय समिति द्वारा किए गए तब तक के कार्य का विवरण दिया। श्री नज़ीर बनारसी ने इस अवसर पर गोस्वामीजी के सम्बन्ध में बड़ी भावपूर्ण कविता सुनाई। राष्ट्रपति [illegible] तुलसीदास जी के महत्व और उनकी स्मृति-रक्षा की आव[illegible] [illegible] विचार प्रकट किए। इस समारोह में न केवल राजधानी के, वरन् दिल्ली से बाहर के भी अनेक गण्यमान्य साहित्यकार उपस्थित थे। उन सब का बाद में राष्ट्रपतिजी ने सत्कार किया।

अगले वर्ष रामनवमी, संवत २०२९ को मावलंकर सभागार में उपराष्ट्रपति डा० गोपालस्वरूप पाठक की उपस्थिति में रामचरित मानस रचना दिवस [illegible] गया। डा० कर्णसिहजी ने सभापतित्व किया। इस अवसर पर प्रसिद्ध आंध्र नर्तक द्वय श्री राजा रेड्डी और श्रीमती राधा रेड्डी ने कुचीपुडी शैली में नृत्य भी प्रस्तुत किया। उपराष्ट्रपतिजी ने गोस्वामी तुलसीदासजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की।

तुलसी जयन्ती संवत २०[illegible] को [illegible] हाल, [illegible]लिटन रोड में बड़े उत्साह से मनाई गई। इस [illegible] में रामभक्त कपीन्द्रजी ने मंगलाचरण किया। श्री जगजीवन राम, डा० कर्णसिंह, श्री कृष्णचन्द्र पन्त, सेठ गोविन्ददासजी और श्री सुधाकर पाण्डेय ने गोस्वामी तुलसीदासजी के चित्र पर माल्यार्पण किया। श्री कृष्णचन्द्र पन्त ने स्वागत भाषण दिया और समिति के उपसभापति श्री रामधारी सिंह दिनकर ने तुलसीदासजी को काव्यमय श्रद्धांजलि अर्पित की। इस अवसर पर दिल्ली प्रशासन के उ[illegible] राज्यपाल श्री बालेश्वर प्रसाद, साहित्य अकादमी के अध्यक्ष डा० सु[illegible]ति कुमार चाटुर्ज्या और डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने तुलसीदासजी के जीवन पर और उनके कृतित्व पर बड़े मार्मिक भाषण दिए। इसी अवसर पर श्री एस० जगन्नाथन द्वारा रामचरितमानस के [illegible] एक [illegible] विमोचन किया गया। रक्षा मंत्री श्री जग[illegible] राम [illegible] समारोह का [illegible] [illegible]ती के क्रान्तिकारी और [illegible]

प्रकाश डाला। डा० कर्णसिंह ने अध्यक्षीय भाषण दिया और श्री सुधाकर पाण्डेय ने राजधानी में इतने सफल साहित्यिक समारोह के लिए धन्यवाद ज्ञापन किया। इसके पश्चात् भारतीय कलाकेन्द्र की टोली ने रामलीला के एक प्रसंग का प्रदर्शन किया। इस अवसर पर प्रसिद्ध पार्श्वगायिका मीनाकपूर ने तुलसीदासजी के भजन सुनाए।

चैत्र शुक्ल रामनवमी संवत २०३१ को मावलंकर सभागार में डा० कर्णसिंह जी की अध्यक्षता में मानस चतुःशती समारोह मनाया गया। इस अवसर पर भारत के सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री अजीतनाथ रे ने गोस्वामीजी के द्वारा प्रणीत रामचरितमानस के महत्व पर एक अत्यन्त मार्मिक भाषण दिया। इस अवसर पर डा० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित 'रामचरित मानस : एक तुलनात्मक अध्ययन' तथा 'रामचरित मानस स्मारिका' का विमोचन किया गया। श्री सुधाकर पाण्डेय के धन्यवाद ज्ञापन के बाद कुमारी सिंघवी और श्रीमती नलिनी मल्होत्रा ने रामचरित मानस के प्रसंगों पर नृत्यनाटिका प्रस्तुत कीं। वाराणसी की प्रसिद्ध गायिका श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी ने तुलसीदासजी के अनेक भजन प्रस्तुत किए।

अन्तर्राष्ट्रीय [illegible]-समिति

रामचरितमानस चतुःशती समारोह के सम्बन्ध में विदेशों में समारोह का समुचित आयोजन करने के लिए कार्यकारी अध्यक्ष की ओर से १९७२ के प्रारम्भ में एक पत्र द्वारा नई दिल्ली स्थित विदेशी दूतावासों से सम्पर्क स्थापित किया गया।

विदेशों से रामचरितमानस की चतुःशती के सम्बन्ध में अत्यन्त उत्साहवर्द्धक प्रतिक्रिया हुई। अनेक भारतीय दूतावासों, संस्थानों एवं यहां तक कि प्रतिष्ठित पत्रिकाओं के सम्पादकों ने हमें [illegible]चित किया कि वे समारोह वर्ष में विशेष आयोजन करने के लिए उत्सुक [illegible]। यह सूचना जिन देशों और नगरों से मिली वे इस प्रकार हैं : रूस, नेपाल, बगदाद, रोम, वेनेजुला, ज़ेर, चिली, बैंकाक, गुयाना, फिजी, सेनेगल, इण्डोनेशिया, [illegible]ंगलादेश, कैनेडा, इटली, आरजेन्टि[illegible], कुवेत [illegible] [illegible]ो- [illegible] रूस, नेपाल, पोलैण्[illegible], इट[illegible] [illegible] चतुःशती स[illegible] [illegible] मनो[illegible]।

फिजी में विशेष रूप से चित्रमय प्रदर्शनी, सेमिनार आदि आयोजित करने की व्यापक योजना बनाई गई। इनके अतिरिक्त भारतीय संस्कृति एवं दर्शन से सम्बन्धित अनेक विद्वानों और संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित किया गया। पोलैण्ड से श्री राबर्ट स्टिलर, सम्पादक "विश्व साहित्य" जो भारतीय साहित्य और दर्शन के विद्वान हैं, हमें सूचित किया कि वे अपनी पत्रिका का विशेष तुलसी समारोह संस्करण निकाल रहे हैं।

रामचरितमानस के प्रचार के लिए रामायण विद्यापीठ (दिल्ली) के संस्थापक श्री कपीन्द्र ने लन्दन, पेरिस, कील (जर्मनी) और हेमबर्ग की यात्रा की थी।

मॉरिशस

मारिशस के जन-जीवन में रामचरितमानस की चतुःशती मनाने के उल्लास को देखकर मानस और उसके रचयिता गोस्वामी तुलसीदास के प्रभाव की आन्तरिकता का सशक्त आभास मिलता है। देश की अनेक धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाएं मानस के जयगान में सहयोग दे रही हैं।

मानस की कीर्ति को जन-जन तक पहुंचाने का कार्य जो एक व्यक्ति कर रहे हैं वे हैं माननीय दयानन्दलाल बसन्तराय। युवा और क्रीड़ा मंत्रालय की तरफ से युवा महोत्सव में जो नाटक खेले गये थे, उसमें मानस पर आधारित नाटकों को वरीयता दी गयी थी। अपनी भारत यात्रा के समय प्राप्त धार्मिक पुस्तकों और तुलसी के चित्रों को भी श्री बसन्तराय ने जनता में बंटवाया। उन्होंने मंत्रालय की तरफ से रामायण पर आधारित एक नाटक प्रतियोगिता भी की है। उसमें जो नाटक प्रथम आयेगा उसके लेखक को निःशुल्क भारत भ्रमण की सुविधा प्रदान की जायगी। हर गुरुवार को रेडियो पर मानस की कथा होती है।

सेवा शिविर के तरुण कार्यकर्ताओं ने रामायण और तुलसीदासजी को लेकर अनेक कार्यक्रम किये। मानस और हनुमान चालीसा की प्रतियां घर-[illegible] वितरित कीं।

[illegible] ब्राह्मण पुजारी मण्डल ने दो बड़ी सप्ताह 'रामायण'

कथाएं आयोजित की हैं। ब्राह्मण महासभा समय-समय पर गोष्ठी करती रहती है। १७ मंदिरों में रामायण पाठ का कार्य प्रारम्भ हो गया है।

मानस पारायण समिति ने ४ महीने तक लगातार मानस का पाठ आयोजित किया। यह पाठ श्रावणी नाग पंचमी से प्रारम्भ होकर राम विवाह के दिन समाप्त हुआ। सारे द्वीप के २४ गांवों में कुल १५६ पारायण हुए। इसमें पूर्णाहुति के दिन माननीय बसन्तराय जी भी उपस्थित थे। देश के वृद्ध रामायणी भक्तों को अभिनन्दन पत्र द्वारा सम्मानित भी किया गया।

— राजेन्द्र अरुण

सोवियत संघ

सोवियत संघ की मानस चतुःशती समारोह समिति के अध्यक्ष, प्राच्य शिक्षा संस्थान के अध्यक्ष, अकादमीशियन बी० गफुरोव ने बताया कि सोवियत संघ में महाकवि तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' का चतुःशती समारोह बड़ी जोरदार ढंग से मनाया गया। मानस के जयंती-समारोह के उपलक्ष्य में १९७३ से १९७४ मार्च तक मास्को, लेनिनग्राद, ताशकंद, दुशान्बे—अर्थात् पूर्व शिक्षा के सभी प्रमुख सोवियत केन्द्रों में सभाओं का आयोजन किया गया। मिखाइलोव ने रामायण तथा तुलसीदास की अन्य रचनाओं पर आधारित एक संगीत रचना तैयार की है। जयंती वर्ष में 'तुलसीदास' नामक एक ग्रंथ प्रकाशित किया गया। इसके लेखक यूरी त्स्वेत्कोव हैं। 'रामचरित-मानस' के अंशों व तुलसीदास की कुछ चुनी हुई कविताओं का काव्य-संकलन भी प्रकाशित किया गया।

मास्को के मैत्री भवन में भारत के महान मध्यकालीन कवि तुलसीदास कृत अमर महाकाव्य रामचरित मानस की चतुश्शती मनाने के लिए सभा का आयोजन जयंती समारोह की सोवियत समिति ने किया। सभा का उद्घाटन प्रोफेसर वाई० चेलिशेव ने किया। इस अवसर पर सोवियत संघ स्थित भारतीय राजदूत श्री के० एस० शैलवंकर ने भी भाषण दिया। तुलसीदास की रचनाओं के सोवियत अनुवादक एस० सेवत्सेंव तथा जी० अरकेनाद्जे ने रामायण के कुछ अंश तथा दोहे सुनाये।

भारतीय लेखक पूर्ण सोम सुन्दरम तथा मदन लाल मधु ने अवधी में रामायण के कुछ अंशों का पाठ किया।

अन्त में संगीत कार्यक्रम हुआ। इसमें मास्को के बाल-थियेटर के कलाकारों ने कुछ भारतीय गीत सुनाए और रामायण के अंश का रंगमंच पर प्रदर्शन किया।

लन्दन

हिन्दू सेंटर ईस्ट लंदन में आयोजित मानस चतुःशती समारोह का उद्घाटन करते हुए भारत के डा० राम[illegible] कि कथा वह कड़ी है जो भारतीय संस्कृति [illegible] सुदृढ़ रखने में समर्थ है। मानस उसी पर [illegible]

के महान ग्रंथ वेद उपनिषद आदि है।

संस्कृत और यूनानी साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान डा० सत्यरंजन बनर्जी ने बताया कि तुलसी का काव्य श्रद्धा विश्वास का काव्य है। इसमें भारत की महान संस्कृति मुखरित हुई है।

इस अवसर पर श्री भारद्वाज ने कहा कि रामामण के माध्यम से ब्रिटेन के प्रवासी अपनी भारतीय संस्कृति की आत्मा को पहचान सकते हैं।

बी०बी०सी० के श्री गणेश भनोत ने कहा कि तुलसीदास जी राम के उस रूप के उपासक थे, जिनके हाथ में धनुषबाण था। आज हमें उस राम की बड़ी आवश्यकता है।

डाक्टर एफ० चंद्रा ने ब्रिटिश गायना तथा सूरिनाम में बसने वाले भारतीयों की सांस्कृतिक और धार्मिक परम्परा पर विशद प्रकाश डालते हुए यह बताया कि रामचरित मानस ने किस प्रकार कठिन परिस्थितियों में दूर देशों में भारतीयता की रक्षा की।

अंत में लन्दन विश्वविद्यालय के प्रवक्ता डा० रामदास गुप्त ने, जो सभा की अध्यक्षता कर रहे थे, कहा कि हमें इस बात का प्रयास करना चाहिएं कि लंदन में किसी सार्वजनिक स्थान पर तुलसी की प्रतिमा लग सके।

समारोह में तुलसी तथा अन्य भक्त कवियों के संगीत भी प्रस्तुत किये गये। श्रीमती कल्पना कुमरिया, गुजरात मंडली की सुश्री जीवा और उनके साथी, श्री जोशी तथा श्री मगन भाई के कार्यक्रम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

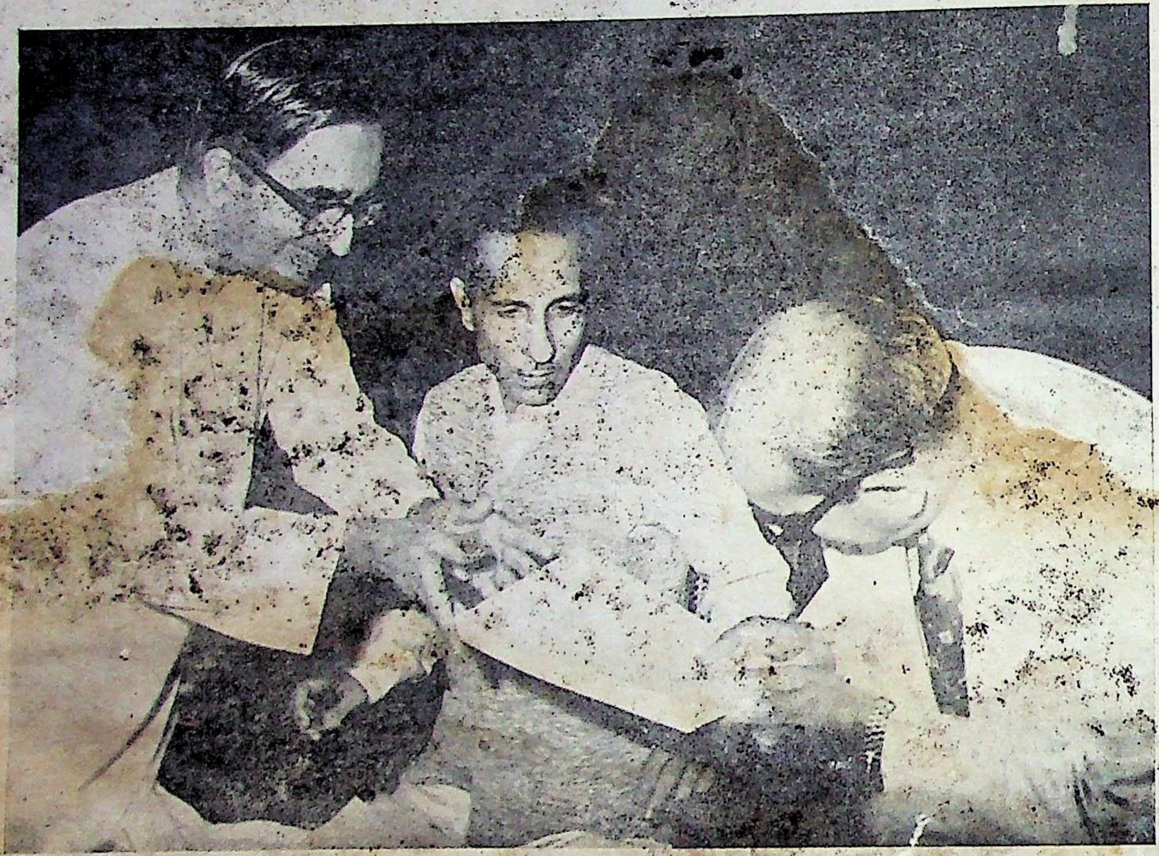
— विष्णु नारायण

थाईलैण्ड

२४ मार्च से ३ अप्रैल, १९७४ तक थाईलैण्ड की राजधानी बैंकाक में 'रामचरितमानस चतुःशती समारोह' बड़ी धूमधाम से मनाया गया।

२४ मार्च संध्या तीन बजे विष्णु मन्दिर के भव्य प्रांगण में रामचरितमानस चतुःशती समारोह प्रारम्भ हुआ। उप-प्रधानमंत्री श्री सुकिच मिम्मेन्हा ने मिन्डा कहा कि आज संसार में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं, परन्तु जीवन के जिन आदर्शों को रामचरितमानस में प्रस्तुत किया गया है उनमें कोई परिवर्तन संभव नहीं है। भगवान राम और रामायण दोनों देशों की समान रूप से धरोहर हैं। रविवार ३१ मार्च को एक विशेष कार्यक्रम आयोजित किया गया था, जिसमें स्वामी सत्यमित्रानन्द एवं राष्ट्रीय समिति के श्री विद्या चरण शुक्ल ने रामचरितमानस के [illegible] पर प्रकाश डाला।

[illegible] कार्यक्रम



रामनवमी २०३१ के समारोह में न्यायमूर्ति श्री अंजीत नाथ के मंत्री श्री सुधाकर पांडे व श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

... चतुःशती ... ब्राह्मण पुजा ...

मनाम ...

रामचरित
मानस
चतुःशती

आवरण

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित
रामचरितमानस की मूल अनुकृति
(राजापुर में प्राप्त प्रति से)

रामचरित मानस चतुःशती
मिं